



पश्चिम मध्य रेलवे

मुख्यालय, जबलपुर

राजभाषा संहिता



भारतरत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर विशेषांक

संपादकीय



“राजभाषा सरिता” के संपादक के रूप में जुड़कर तथा आप सभी की सेवा का अवसर पाकर मुझे अत्यंत खुशी हो रही है। “राजभाषा सरिता” का यह अंक हमारे देश के संविधान शिल्पकारों में मुख्य भूमिका निभाने वाले एवं भारत रत्न से विभूषित डॉ. भीमराव अंबेडकर को समर्पित है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर एक महान युगदृष्टा थे। वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता तो थे ही, अपने जीवनकाल में दर्शन शास्त्र, विधि शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र आदि अनेकों विषयों पर उन्होंने सारगर्भित लेखन कार्य भी किया। एक अच्छे लेखक के साथ-साथ वे एक अच्छे राजनीतिज्ञ, शिक्षाविद्, अर्थशास्त्री एवं समाज सुधारक भी रहे हैं। तत्कालीन सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध उन्होंने सतत् संघर्ष किया और उपेक्षित मानव जाति को मानवीय अधिकार और न्याय दिलाने में अपना संपूर्ण जीवन समर्पित किया। लब्ध प्रतिष्ठित पुस्तकों से प्राप्त जानकारी के अनुसार उन्होंने 32 डिग्रीयां हासिल की थी, जो किसी भी भारतीय के लिए एक गौरव की बात है। स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि व न्याय मंत्री के रूप में उन्होंने देश की न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ करने व महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने में महती भूमिका निभाई है।

किसी भी पत्रिका की उपयोगिता व महत्व उससे जुड़े रचनाकारों पर निर्भर करती है। इस पत्रिका के पूर्व संपादक आदरणीय पी.एस. बगड़वाल का मैं हृदय से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ कि उन्होंने सक्षम प्रकाशन टीम एवं अच्छे रचनाकारों को जोड़े रखा। मैं सभी का धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी वे अपना स्नेह व योगदान प्रदान करते रहेंगे।

इस विशेषांक को विशेष बनाने के लिए हमने जिन संदर्भ पुस्तकों, लेखों आदि की सहायता ली है, उनके मूल लेखकों तथा संकलनकर्ताओं के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ। सभी सम्मानित पाठकों के बहुमूल्य सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा रहेगी।

धन्यवाद।

(राज रंजन श्रीवास्तव)

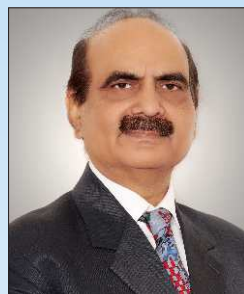
राजभाषा अधिकारी

शैलेन्द्र कुमार सिंह

महाप्रबंधक



पश्चिम मध्य रेलवे



संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिम मध्य रेलवे, मुख्यालय, राजभाषा विभाग द्वारा “राजभाषा सरिता” का 40 वां अंक भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी, न्याय एवं मानवता के मसीहा डॉ. अंबेडकर का मुख्य एवं एकमात्र उद्देश्य न्यायपूर्ण तथा भेदभाव मुक्त समाज का निर्माण करना था। उन्होंने देश तथा समाज के हित को सदैव सर्वोपरि रखा। वे प्रायः कहते थे कि पहले और बाद में भी हम केवल भारतीय हैं। इस महामानव ने हमारे देश को “शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो” का महामंत्र प्रदान किया।

मुझे विश्वास है कि इस विशेषांक में संकलित लेख हमें उनकी प्रखर राष्ट्रभक्ति, ऐतिहासिक दूरदर्शिता, विद्वता, निष्पक्षता एवं आदर्श समाज के संगठन तथा निर्माण में उनके योगदान को जानने और उनके बहुआयामी एवं विराट व्यक्तित्व को समझने में सहायक सिद्ध होंगे।

मैं, इस सराहनीय प्रयास के लिए राजभाषा विभाग को बधाई देता हूँ और “विशेषांक” के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

(शैलेन्द्र कुमार सिंह)

शोभन चौधुरी
अपर महाप्रबंधक



पश्चिम मध्य रेलवे



संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि राजभाषा विभाग, मुख्यालय द्वारा “राजभाषा सरिता” का 40 वां अंक बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र, सामाजिक एवं राजनीतिक शास्त्र तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषयों का गहन ज्ञान रखने वाले उच्च कोटि के अनुपम राष्ट्रभक्त थे। वे हमेशा राजनीतिक प्रजातंत्र को सामाजिक प्रजातंत्र के रूप में देखने के अभिलाषी रहे हैं। उन्होंने कहा है कि सामाजिक प्रजातंत्र एक ऐसी जीवन पद्धति है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांतों के रूप में स्वीकार करती है।

मुझे विश्वास है कि इस विशेषांक में संकलित लेख हमें भारतीय संविधान के सूत्रधार व भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर के जीवन के कई अनछुए पहलुओं को जानने का सुअवसर प्रदान करेगा।

मैं इस सराहनीय प्रयास के लिए संपादक मंडल को बधाई देता हूँ और पत्रिका के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

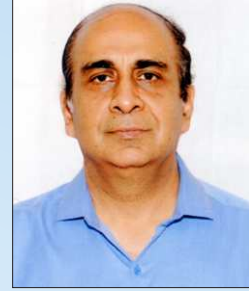

(शोभन चौधुरी)

रविशंकर सक्सेना

प्रमुख मुख्य यांत्रिक इंजी एवं
मुख्य राजभाषा अधिकारी



पश्चिम मध्य रेलवे



संदेश

राजभाषा हिंदी के प्रयोग-प्रसार में गृह पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनके नियमित प्रकाशन से न केवल कार्यालयों में राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन तथा उत्तरोत्तर प्रगति हेतु अनुकूल वातावरण निर्मित होता है बल्कि रेल अधिकारियों एवं कर्मचारियों की साहित्यिक प्रतिभा उजागर करने और उनकी लेखन प्रतिभा में निखार लाने में भी पत्रिकाएं सहायक सिद्ध होती हैं।

यह बड़ी खुशी की बात है कि पश्चिम मध्य रेलवे, मुख्यालय, राजभाषा विभाग द्वारा गृह पत्रिका “राजभाषा सरिता” का नियमित रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। मुझे आपको यह बताते हुए प्रसन्नता हो रही है कि हमने इस पत्रिका के 40 वें अंक को ‘डॉ. भीमराव अंबेडकर विशेषांक’ के रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।

मुझे विश्वास है कि यह विशेषांक हमें भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर के विविध आयामी व्यक्तित्व तथा गुणों को अपने जीवन में आत्मसात करने का अवसर प्रदान करेगा। इस विशेषांक में संकलित लेखों से हमें उनके दृष्टिकोण एवं सिद्धांतों के अनुरूप जीवन पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी।

इस प्रशंसनीय पहल के लिए मैं, राजभाषा विभाग को अपनी हार्दिक बधाई देता हूँ और इसके सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ।

25/11

(रविशंकर सक्सेना)

अपनों से अपनी बात ...



राजभाषा सरिता का 40 वां अंक हमारे देश की महान विभूति भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर विशेषांक के रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है।

यह अंक ऐसे महान युगदृष्टा को समर्पित है जिन्होंने कहा था कि आजादी का मतलब सिर्फ अधिकार पाना भर नहीं है। इसलिए हमारे संविधान में सरकार और नागरिकों के अधिकारों के साथ ही साथ उनके कर्तव्यों का भी विस्तार से उल्लेख किया गया है। उन्होंने यह भी कहा था कि कोई संविधान चाहे कितना ही अच्छा हो, वह बुरा भी साबित हो सकता है यदि उसका अनुसरण करने वाले लोग बुरे हों। एक संविधान चाहे जितना बुरा हो, वह अच्छा साबित हो सकता है, यदि उसका पालन करने वाले लोग अच्छे हों।

बाबा साहेब की सोच में देश तथा समाज हमेशा ही सर्वोपरि रहा है। उन्होंने वंचना के थपेड़ों और विपरीत परिस्थितियों से लड़कर, अनूठी अध्ययनशीलता, विलक्षण प्रतिभा तथा समाज का भला करने की उत्कट इच्छा से अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया। उन्होंने अपने समतावादी विचारों से समाज में समानता स्थापित करने और जाति व्यवस्था को बदलने के लिए जीवन भर संघर्ष किया।

‘शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो’ का नारा देकर उन्होंने समाज के उत्थान में अमूल्य योगदान दिया है। बाबा साहेब के विचार समय के साथ और भी प्रासंगिक होते जा रहे हैं। डॉ. अंबेडकर ने अपनी योग्यता और प्रतिभा से साबित किया कि मनुष्य जन्म से नहीं बल्कि अपने कर्म से महान बनता है। हम ऐसे प्रखर राष्ट्रभक्त, निष्पक्ष और उदार हृदय को शत-शत नमन करते हैं।

राजभाषा सरिता के चौथे अंक से संपादक के रूप में आपके निकट आने और अपने विचार प्रकट करने का परम सौभाग्य और गौरव प्राप्त हुआ था। इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करते-करते संपादक के रूप में मेरा यह अंतिम 40 वां अंक भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार एवं समाज सुधारक भारत रत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर को समर्पित करते हुए मुझे गर्व हो रहा है।

पश्चिम मध्य रेलवे की गृह पत्रिका “राजभाषा सरिता” के संपादक और मुख्यालय में वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी के रूप में मेरे कर्तव्यों के निर्वहन और इस रेलवे पर भारत सरकार की राजभाषा नीति के कारगर एवं सफल कार्यान्वयन में मुझे अपने सभी महाप्रबंधकों, मुख्य राजभाषा अधिकारियों, विभाग प्रमुखों, मंडलों तथा कारखानों के प्रमुखों से उत्कृष्ट नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इस हेतु मैं सभी का आभार व्यक्त करता हूँ।

अंत में इस रेलवे के सभी हिंदी प्रेमी अधिकारियों एवं कर्मचारियों और राजभाषा विभाग के अपने सभी सहयोगियों को धन्यवाद देना चाहूंगा जिनके अथक परिश्रम, सामूहिक प्रयासों से हमने कई अभूतपूर्व सफलताएं अर्जित की हैं।

राजभाषा सरिता के नियमित प्रकाशन में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करने वाले हमारे लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकारों, सम्मानीय लेखकों एवं कवियों तथा राजभाषा विभाग के सहयोगियों का तहेदिल से धन्यवाद ज्ञापित करना मेरा प्रथम कर्तव्य है जिनके सहयोग के बिना यह संभव नहीं था।

इस विशेषांक के प्रकाशन में हमने जिन संदर्भ पुस्तकों, लेखों आदि की सहायता ली है, हम उनके मूल लेखकों तथा संकलनकर्ताओं के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

धन्यवाद।

जय हिंद – जय हिंदी।

(पी.एस.बगड़वाल)

पूर्व वरि.राजभाषा अधिकारी



राजभाषा सरिता

अंक - 40

वर्ष - 2021

अप्रैल - जून

✽
संरक्षक
श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह
महाप्रबंधक

✽
श्री शोभन चौधुरी
अपर महाप्रबंधक

✽
मार्गदर्शक
श्री रविशंकर सक्सेना
मुख्य राजभाषा अधिकारी

✽
परामर्श
श्री राहुल श्रीवास्तव
उप मुख्य राजभाषा अधिकारी

✽
संपादक
राज रंजन श्रीवास्तव
राजभाषा अधिकारी

✽
उप संपादक
राकेश कुमार मालवीय
वरिष्ठ अनुवादक

✽
सहयोग
राजभाषा विभाग

✽
छायांकन
श्री राजेन्द्र पैगवार

✽
पत्राचार का पता
संपादक, राजभाषा सरिता
पश्चिम मध्य रेलवे

कार्यालय, इंदिरा मार्केट, जबलपुर (म.प्र.)
फोन : 0761-2627077, 54714 (रेलवे)

- सीमित संख्या में निःशुल्क वितरण के लिए।
- पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।

अनुक्रमणिका

क्र.	शीर्षक	पृष्ठ
1.	होनहार बिरवान के होत चीकने पात	02
2.	वे जानते थे पसीने का मोल	10
3.	बाबा साहब का पुस्तक प्रेम	12
4.	उठाया सौ टके का सवाल	13
5.	वे आज भी दिखाते हैं राह	17
6.	मैं अंबेडकर बन जाऊंगा (कविता)	19
7.	अनुपम राष्ट्रभक्त	20
8.	एक नाम, हजार आयाम	27
9.	बाबा साहब के अनछुए पहलू	37
10.	छाया चित्र वीथिका	38



मुख पृष्ठ - प्रस्तावित नया संसद भवन, नई दिल्ली, भारत

होनहार बिरवान के होत चीकने पात

रत्नागिरी प्रांत की मंडणगड तहसील में एक छोटा-सा गाँव है - आंबवेड। इसी गाँव के वासी थे रामजी वल्द मालो जी सकपाल। वे महार जाति के थे जिसे अस्पृश्य समझा जाता था। यह जाति महाराष्ट्र में अपने शौर्य एवं ईमानदारी के लिये प्रसिद्ध थी।

सूबेदार रामजी का विवाह मुरवाडकर की कन्या भीमाबाई के साथ हुआ था। पत्नी भीमाबाई का बचपन सम्पन्न परिवार में बीता था, किन्तु ससुराल उतनी धनाढ्य नहीं थी। फिर भी वे अपने मध्य वर्गीय परिवार में प्रसन्न थीं। आर्थिक संकट से ग्रस्त होने पर भी उन्होंने पति को इस बात का कभी उलाहना नहीं दिया था। सन् 1890 तक वे 13 बच्चों की माता बन चुकी थीं।

जब सूबेदार रामजी की सैनिक टुकड़ी महू छावनी में पड़ाव डाले हुये थी तभी भीमाबाई ने 14 अप्रैल 1891 ईस्वी को चौदहवीं संतान के रूप में एक पुत्र को जन्म दिया। वह बालक जन्म के समय काफी स्वस्थ था। इसलिये उसका नाम भीम रखा गया किन्तु

परिवार वाले 'भीमा' कहकर बुलाया करते थे।

जब भीम तीन वर्ष के थे तभी पिता सूबेदार रामजी सेवा से निवृत्त हो गये और कापढ़ापोली गाँव में सेवा निवृत्त सैनिकों के साथ रहने लगे। उन दिनों दापोली नगर परिषद् की पाठशालाओं में अस्पृश्य बच्चों को शिक्षा नहीं दी जाती थी। सूबेदार रामजी बच्चों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में थे। सतारा पी.डब्ल्यू.डी. के कार्यालय में वे स्टोरकीपर के रूप में कार्य करने लगे।

सतारा की फौजी छावनी में बसे कोंकणवासी महार सेवा निवृत्त परिवारों के साथ रहते हुये भीम का बचपन बीता और प्राथमिक

शिक्षा भी यहीं पाई। छः वर्ष की अवस्था में उनकी माता का स्नेहांचल उनके सिर से उठ गया। उसके बाद उनका लालन-पालन अपंग बुआ मीराबाई की देखरेख में हुआ। उनके लाड प्यार में भीमा की उद्विग्नता बढ़ती चली गई। वह वृक्ष पर नित्य 'सूरपाख्या' खेल खेलना, मारपीट करना, ऊधम मचाना और नये नये बखेड़े करना उनकी आदत बन चुकी थी। घर और बाहर के लोग उनकी शरारतों से तंग आ चुके थे, पर मीराबाई उनके लिये एक सुरक्षित कवच का काम कर रही थीं।

पिता सूबेदार रामजी कबीरपंथी थे। वे नित्य अपने बच्चों से भजन, उमंग और दोहों का पाठ करवाया करते थे। नित्य प्रातः वे बच्चों से उनका अभ्यास करवा लेते थे। इस धार्मिक शिक्षा का प्रभाव भीम पर भी अपनी छाप अंकित करता चला गया।

7 नवम्बर 1900 ईस्वी में भीमराव रामजी अंबेडकर को स्थानीय हाईस्कूल में अंग्रेजी की प्रथम कक्षा में प्रवेश मिला। वे कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। एक दिन वे स्कूल से छुट्टी पाने के उद्देश्य से वर्षा में भीगते हुये पहुँचे तो शिक्षक पेंडसे ने उन्हें अपने घर भिजवाकर पहनने के लिये लंगोटी और ओढ़ने के लिये अंगोछा दिलवाया तथा कक्ष में बैठने का आदेश दिया। उस दिन की घटना ने उनके बाल जीवन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। उनका हठीलापन और शरारतें जीवन सरोवर से काई की तरह फटते चले गये। अस्पृश्यता की पीड़ा को झेलते हुये उन्होंने चौथी कक्षा पास की किन्तु अपमानजनक घटनाओं ने उनके बाल हृदय में विद्रोह का बीज बो दिया था जो सवर्णों के सीचने से पनपता गया।

अकाल के दिनों में सूबेदार रामजी को गोरे गाँव के पास काम पर लगा दिया गया था। सन् 1904 ईस्वी में वे अपने परिवार को मुम्बई ले गये और परेल क्षेत्र की डबक चाल में रहने लगे। भीमराव रामजी अंबेडकर को सरकारी एल्फिंस्टन हाईस्कूल में नवम् वर्ग में प्रवेश मिला यहाँ पर अध्ययन करते हुये उनका विवाह भिकू वलंगकर की पुत्री रमाबाई के साथ हो गया। वे मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले महार जाति के प्रथम छात्र थे। इससे महार जाति के लोगों में विशेष उल्लास था।

डबक चाल के वासियों ने भीमराव रामजी अंबेडकर का अभिनन्दन किया। इस अभिनन्दन समारोह के अवसर पर केलुस्कर गुरुजी ने मराठी में स्वरचित पुस्तक 'भगवान बुद्ध का



संविधान देश की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक अत्यंत उपयुक्त दस्तावेज है - डॉ. अम्बेडकर

आत्मचरित' दी और बड़ौदा नरेश श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड़ से बीस रुपये की मासिक छात्रवृत्ति भी दिलवा दी।

3 जनवरी 1908 को उन्हें एल्फिंस्टन कॉलेज में प्रवेश मिला गया। उन दिनों उनके सहपाठियों में धनाढ्य और सवर्णों की संख्या अधिक थी। उनकी अंग्रेजी और फारसी में अच्छी पकड़ थी। इच्छा होते हुये भी अस्पृश्य छात्र होने के कारण उन्हें संस्कृत पढ़ने से वंचित रखा गया। इसी कारण उन्हें फारसी पढ़नी पड़ी। कॉलेज के दिनों में फारसी के उप आचार्य के.बी. ईरानी और आचार्य प्रो. मुल्लर के वे विशेष कृपापात्र रहे थे। नवम्बर 1912 ईस्वी में वे बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुये। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी पर पिता की प्रबल इच्छा थी कि उनका मेधावी पुत्र उच्च शिक्षा प्राप्त करके जाति और वंश का नाम रोशन करें।

उन्होंने पिता की इच्छा के विरुद्ध बड़ौदा रियासत की सेना में लेफ्टिनेंट पद पर कार्य करना स्वीकार कर लिया। उन्हें यह पद सम्भाले मुश्किल से 15 दिन ही हुये थे कि पिता की गम्भीर बीमारी की सूचना तार द्वारा मिली। घर पहुँचने पर वे पिता के अंतिम दर्शन ही कर सके। 12 फरवरी 1913 को सूबेदार रामजी परलोक सिंधार गये।

इस विषम परिस्थिति में उनका स्वालम्बी बनना आवश्यक हो गया था, पर वे अपनी नौकरी पर बड़ौदा नहीं जाना चाहते थे। उन्होंने उच्च शिक्षा के लिये मुम्बई स्थित राजवाड़े में श्रीमंत सयाजी राव गायकवाड़ से भेंट की और 4 जून 1913 को बड़ौदा जाकर शिक्षा उपमंत्री के कार्यालय में संविदा पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके अनुसार उच्च शिक्षा पूर्ण होते ही उन्हें बड़ौदा राज्य की नौकरी में दस वर्षों तक रहना आवश्यक था।

बाईस वर्ष की अवस्था में 12 जुलाई 1913 को न्यूयार्क पहुँचे। इस प्रवास काल में नवल भतना नामक एक पारसी विद्यार्थी उनका अंतरंग मित्र बन गया। यहाँ पर रहते हुये उन्होंने अर्थशास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र, मानवशास्त्र और राजनीति शास्त्र का गहन अध्ययन किया। सन् 1915 ईस्वी में उन्होंने 'एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड फाइनेंस ऑफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी' विषय पर अपना शोध प्रबंध प्रस्तुत कर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इन्हीं दिनों वे नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया ए हिस्टोरिकल एण्ड ऐनेलेटिकल स्टडी विषय पर भी शोधकार्य में रत थे। उन्होंने 1916 ईस्वी में अमेरिका से विदा लेकर अक्टूबर में कानून विषय का अध्ययन करने के लिये 'ग्रेज इन' और अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए 'लंदन स्कूल ऑफ

इकानामिक्स एण्ड पोलिटिकल्स साइंस' में उन्होंने प्रवेश लिया। किन्तु बड़ौदा रियासत की ओर से छात्रवृत्ति समाप्त कर दिये जाने के कारण अध्ययन छोड़ना पड़ा था। प्राध्यापक प्रो. एडविन केनन की मदद और सिफारिश से चार वर्ष के बीच पुनः अध्ययन शुरू करने की लंदन विद्यापीठ से अनुमति प्राप्त कर 21 अगस्त 1947 को कोलंबो होते हुये मुम्बई पहुँचे थे।

बड़ौदा राज्य सरकार के इकरारनाम के अनुसार वे सितम्बर मास में बड़ौदा पहुँचे। वहाँ वे सेना सचिव बनाये गये थे। इतने उच्च पद पर रहते हुये भी अधीनस्थ अधिकारियों व कर्मचारियों का व्यवहार उनके प्रति ठीक नहीं था। इसका कारण था उनका अस्पृश्य होना। वे अपमान का घूँट पीते हुये भी वहाँ काम करते रहे, किन्तु जब अस्पृश्य होने के कारण पारसी होटल से बोरिया बिस्तर गोल करना पड़ गया और महाराज के कहने पर भी मंत्री महोदय उनके आवास की कोई व्यवस्था नहीं कर सके तो विवश होकर वे नवम्बर 1917 ईस्वी को मुम्बई लौट आये। उन्होंने 5 दिसम्बर 1917 को सिडनहम कॉलेज में प्राध्यापक पद के लिये प्रार्थनापत्र भेजा, वहाँ पर उन्हें 450 रुपये मासिक पर अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र विषय के प्राध्यापक के रूप में अस्थायी नौकरी मिली। वे अपने अध्यापन के कारण शीघ्र ही शिक्षार्थियों में लोकप्रिय हो गये।

27 जनवरी 1919 ईस्वी में उन्होंने मताधिकार की पड़ताल करने वाली 'साउथबरो समिति' के समक्ष गवाही दी थी। इसमें उन्होंने अपना प्रतिवेदन पेश किया था कि लोग प्रतिनिधियों की सरकार सच्चे मायने में बनानी है तो दलित समाज को उसकी जनसंख्या के अनुरूप प्रतिनिधित्व देना कितना आवश्यक है। उन्होंने दलितों के लिये नौ स्थान रखने की माँग की थी।

वे सन् 1919 ईस्वी में कोल्हापुर वासी दत्तोबा पवार के द्वारा कोल्हापुर के छत्रपति श्री शाहूजी महाराज के सम्पर्क में आये थे। उनकी मदद से उन्होंने 'मूकनायक' पाक्षिक पत्र का प्रकाशन दलित आंदोलन के मुख्य पत्र के रूप में किया था। उनका बड़ा पुत्र यशवंत था। उनकी पत्नी रमाबाई स्वभाव से ही कम बोलने वाली, दृढ़ निश्चयी और स्वाभिमानी महिला थी। उनका दूसरा पुत्र गंगाधर शीघ्र ही परलोक वासी बन गया था। सवर्णों की कृपा के कारण ही उनके पाक्षिक पत्र 'मूकनायक' में विज्ञापन छापने के लिये नहीं मिलते थे। इसके एक अग्रलेख में उन्होंने लिखा था कि यदि भारतीयों को ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहिये, अपना स्वराज्य

चाहिये तो उन्हें दलितों को पहले मुक्त करना चाहिये। यह पाक्षिक अर्थाभाव के कारण थोड़े समय बाद ही बंद हो गया था।

उन्होंने राष्ट्रपिता गाँधी जी के आंदोलन के समान ही अपने आंदोलन समाज के सब से शोषित, पीड़ित और दलित वर्ग को जगाने के लिये छेड़ा था। यह समाज धनाभाव से पीड़ित तो था ही पर सवर्णों द्वारा भी दुत्कारा फटकारा जाता था। जब इस समाज का पुरुष वर्ग ही अज्ञान के अंधकार में डुबकी लगा रहा था, तो नारी जाति की तो बात ही क्या। इसलिये उनके क्रांतिकारी विचारों के प्रति दलित महिलाओं का आकर्षण स्वाभाविक था।

उन्होंने सन् 1920 में अपने सामाजिक आंदोलन की शुरुआत की। उन्होंने दलितों की प्रगति एवं विकास के लिये धर्मशास्त्रों के विरुद्ध धुआँधार प्रचार किया। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों से वर्ण व्यवस्था व धर्मशास्त्रों पर करारी चोट की तथा दलितों के लिए कुआँ से पानी लेने और मंदिरों में प्रवेश के लिये शांतिपूर्ण सत्याग्रह का रास्ता अपनाया। उन्होंने अपने 'स्वतंत्र मजदूर दल' की ओर से ठोस कार्य किये। दलितों का संगठन बनाया और उन्हें उनके अधिकार लौटाने के लिये कई कानून बनवाये।

सन् 1920 से 'बहिष्कृत भारत' के सम्मेलनों के मंच पर आकार दलित महिलाएँ स्वागत गीत गाने लगी। वेणुबाई भटकर व रेगूबाई इनमें अग्रणी थीं। उन्होंने धर्म परिवर्तन कर नौकरी पाने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने शिक्षा के प्रसार के लिये हर सम्भव प्रयास किये।

जुलाई 1920 के अंतिम सप्ताह में वे महावारी वेतन से बची राशि, अपने परम् स्नेही मित्र नवल भथेना से ऋण के रूप में लिए पाँच हजार रुपये और कोल्हापुर नरेश से आर्थिक सहायता के बल पर पुनः लंदन पहुँचे। वहाँ रहते हुए उन्होंने अपना शोध कार्य पूरा किया। 'प्रॉविंशियल डिसेंट्रलायजेशन ऑफ इम्पीरियल फायनेंस

इन ब्रिटिश इंडिया' विषय पर 1921 में उन्हें एम.एस.सी. की उपाधि प्रदान की गई। अक्टूबर 1922 में उन्होंने 'दि प्रॉब्लेम ऑफ दि रूपी' नामक प्रबंध लिखकर उसे डी.एस.सी. उपाधि प्राप्त करने के लिये प्रस्तुत किया था। अप्रैल और मई मास में वे जर्मनी हो आये फिर एक बार बौन विश्वविद्यालय में जाकर तीन मास तक संस्कृत का अभ्यास करते रहे। अप्रैल 1923 में वे मुम्बई आ गये और अपना प्रबंध पुनः लिखकर भिजवाया। जिस पर उन्हें 'डॉक्टर ऑफ साइंस' की उपाधि से सम्मानित किया गया। इस दौरान वे लंदन से बैरिस्टर की उपाधि भी प्राप्त कर चुके थे।

पारिवारिक स्थिति में जैसे ही स्थिरता का उन्हें अहसास हुआ वैसे ही उन्होंने सामाजिक और सार्वजनिक जीवन में पदार्पण कर दलितों के लिये सर्वव्यापी आंदोलन का समस्त भार सम्भाल सकने वाली संस्था की घोषणा कर दी। उस संस्था का नाम था 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा'। 17 मई 1924 को इसके अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में देश की गुलामी व दलितों की गुलामी की तुलना करते हुये उन्होंने सिद्ध किया कि देश की गुलामी से दलित समाज की गुलामी हालत बहुत दर्दनाक है। इसे खत्म करने के लिये अस्पृश्यता समाप्त करनी होगी, अन्यथा देशांतर करने का रास्ता अपना पड़ेगा।

उन्होंने 15 दिसम्बर 1925 को 'रायल कमीशन ऑन इंडियन करेंसी एण्ड फायनेंस' के सामने गवाही दी। वे सर्वसाधारण व्यक्ति के हर पहलू पर बड़ी बारीकी के साथ ध्यान दिया करते थे। वे किसानों के हित के लिये भी लड़े।

सन् 1926 में सतारा जिले के कोरेगाँव तहसील में स्थित रहमतपुर गाँव में सतारा जिला महारा परिषद् के अधिवेशन में उन्होंने कहा था कि जैसे-जैसे अस्पृश्यजनों के हाथ में अधिकार आते जायेंगे, उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी, वैसे-वैसे उनकी प्रगति भी अधिक होने लगेगी।

1927 के आरम्भ में उन्हें मुम्बई विधान मंडल का सदस्य नियुक्त किया गया। 18 फरवरी 1927 को उन्होंने शपथ ली और 24 फरवरी को मुम्बई विधान मंडल में अपना पहला भाषण बजट पर दिया था। 10 मार्च 1927 को उन्होंने सरकार की नशाबंदी नीति पर आलोचना की।

13 नवम्बर 1927 को मंदिर प्रवेश के लिये अमरावती में सम्मेलन हुआ। इसमें अध्यक्ष पद से भाषण देते हुये उन्होंने कहा था कि कोई भी देवता दलितों के कारण भ्रष्ट नहीं होता इसलिये दलित



जो संघर्ष करते हैं यश उनका ही वरण करता है – डॉ. अम्बेडकर

वर्ग के लिये अलग मंदिर बनवाया जाये, इसका हम विरोध करते हैं। अगर यह माना जाता है कि हिन्दुत्व हिन्दुओं के लिये है तो फिर वह स्पृश्य और अस्पृश्य दोनों के लिये है। हिन्दुत्व के विकास में ऋषि वाल्मीकि, रोहिदास और चोखामेला आदि संतों तथा सिद्धाक जैसे महार भक्तों का भी बहुत बड़ा योगदान है।

25-26 दिसम्बर 1927 को जो सत्याग्रह हुआ, उसमें कई सवर्णों ने भी भाग लिया। दलित समाज की महिलायें बड़ी मात्रा में शामिल हुईं। इन महिलाओं में शांताबाई शिंदे नाम की एक लड़की भी थी। कलेक्टर महोदय का आदेश था कि 'चवदार' तालाब सरकारी है अथवा निजी, इसका निर्णय न होने तक इसके जल का न छुआ जाये। इस पर लोगों ने कहा कि हम सत्याग्रह करेंगे ही। तभी महिलाओं और दलितों को अपमानित करने वाली 'मनु स्मृति' के दहन का प्रस्ताव हुआ। इसके दहन के उपरांत 'चवदार' तालाब की प्रदक्षिणा हेतु बहुत बड़ा जुलूस निकला, जिसमें 50 महिलाओं ने भी भाग लिया।

रात्रि की सभा में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने महिलाओं को संबोधित किया, आप सब साफ-सुथरी रहें। पढ़ी-लिखी उच्च वर्ग की महिलाओं के समान साड़ियाँ पहनें। अगर पति अथवा पुत्र शराब पीकर घर आते हैं, तो उनके लिये घर के दरवाजे बंद कर दें। टिपणीस, चित्रे और बुद्धे के परिवार की महिलाओं ने साड़ी बाँधने और सजने-सँवरने का ढंग सिखाया।

सन् 1928 के जून मास में वे सरकारी विधि महाविद्यालय में बदली की जगह पर नियुक्त हुये। कुछ साल बाद वे इस महाविद्यालयों के प्रधानाचार्य भी बने। इन दायित्वों को निभाते हुए भी वे दलितों और नारियों के उत्थान के लिए लगातार संघर्षरत रहे थे। अब तक वे दलितों के सबसे बड़े नेता बन चुके थे।

2 मार्च 1930 को नासिक के सुप्रसिद्ध कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिये सत्याग्रह का निश्चय किया गया। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक आदि प्रांतों से 15-16 हजार सत्याग्रही नासिक पहुँचे। रणखांबे और गायकवाड़ के घरों में कार्यकर्ताओं की बड़ी भीड़ हुई। भाऊराव गायकवाड़ की पत्नियाँ सीता बाई और गीता बाई तथा भाभी रमा बाई आदि महिलाओं ने कार्यकर्ताओं के खानपान का प्रबंध करने के लिये सख्त मेहनत की।

मध्याह्न 3 बजे 16 हजार लोगों का विशाल जुलूस निकला जिनमें 500 महिलायें भी थीं। संध्या 5 बजे जुलूस मंदिर तक पहुँचा। सवर्णों ने मंदिर के द्वार बंद कर दिये थे। बाद में सत्याग्रह के

लिये 35 महिलाओं ने अपने नाम लिखवाये। 3 मार्च को प्रातः 9 बजे डॉ. भीमराव जी अम्बेडकर की अध्यक्षता में सभा हुई। तत्पश्चात् मंदिर के चारों दरवाजों पर धरना देने का कार्यक्रम हुआ। हर दरवाजे पर महिलायें भी थीं फिर सत्याग्रही मंदिर की परिक्रमा करने के लिये तैयार हुये। इस कार्यक्रम में भी कई महिलाओं ने भाग लिया। सवर्णों की ओर से उन पर भी पथराव हुआ। दिसम्बर 1931 में धारा 144 तोड़ने के अपराध में 46 सत्याग्रहियों को बंदीगृह भेज दिया गया जिनमें से 27 महिलायें थीं। अत्याचार का सामना करने के लिये पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं के समता सैनिक दलों की स्थापना हुई।

सन् 1930, 1931 एवं 1932 में लंदन में हुए गोलमेज सम्मेलनों में डॉ. भीमराव जी अम्बेडकर ने अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व किया और उनके हितों के लिये आवाज उठाई। विगत दस वर्षों से वे दलितों के उत्थान में लिप्त होने के कारण अपने परिवार की ओर कोई ध्यान नहीं दे पाये थे। सभाओं से लड़ती हुई रमा बाई अपने तीन पुत्रों और एक पुत्री का वियोग सहन न कर सकी और 27 मई 1935 को इस मायावी संसार से विदा ले गई।

8 दिसम्बर 1935 को मुम्बई के फरास रोड क्षेत्र में उन्होंने धर्म परिवर्तन के विषय में पहला महत्वपूर्ण भाषण दिया। 'थोड़ी-थोड़ी संख्या में बिखर कर पराये धर्म को स्वीकार करने में आप लोगों का अहित होगा। धर्म बदलने का मेरा दृढ़ निश्चय है। अस्पृश्यता हिन्दु धर्म में छूत की बीमारी की तरह लगी हुई है। इसलिये हमें ऐसे धर्म से अलिप्त रहना चाहिये'।

15 मार्च 1936 को उन्होंने बम्बई थियेटर में चित्तरंजन थियेटर कम्पनी द्वारा अभिनीत मराठी नाटककार अप्पा साहब टिपणीस द्वारा रचित अस्पृश्यता की समस्या पर आधारित नाटक 'दाखांचा दिवा' देखा। अगस्त 1936 में उन्होंने 'स्वतंत्र मजदूर दल' नामक संस्था स्थापित की और 15 अगस्त को अपने दल के ध्येय और नीति को समझाते हुये एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमें स्पष्ट किया कि भले ही नये विधान में राज्य शासन प्रणाली को दायित्व का भार पर्याप्त रूप से प्राप्त नहीं हुआ है, फिर भी हमें जो कुछ भी दिया गया है इस राज्य विधान को पूरी तरह अमल में लाने का हमने निर्णय कर लिया है।

17 फरवरी 1937 को मुम्बई विधानसभा के सदस्यों का चुनाव हुआ जिसमें वे अत्याधिक मतों से विजयी हुये। सर्वत्र उनकी विजय के उत्सव मनाये गये। इन्हीं दिनों के आसपास 16

मार्च 1937 को मुम्बई के उच्च न्यायालय में महाड़ के 'चवदार' तालाब के विषय में विचारधीन अपील पर अपना फैसला सुना दिया, जिसके अनुसार दलितों को उस 'चवदार' तालाब का पानी पीने और उपयोग में लाने का अधिकार संस्थापित हो गया।

23 अगस्त 1937 को मुम्बई विधानसभा में मंत्रियों के वेतन, घर-किराया, यात्रा भत्ता के विषय में एक विधेयक चर्चा के लिये पेश किया गया। उसका कड़ा विरोध करते हुए उन्होंने कहा 'वेतन पर विचार करते समय कार्य क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा, प्रजातंत्र और शासन के प्रति सत्यनिष्ठा पर भी ध्यान देना चाहिये'।

4 फरवरी 1938 को शोलापुर नगरपालिका ने उन्हें मानपत्र अर्पित किया। उस समय उन्होंने कहा, 'हमारे देश के प्रजातंत्र ने अपनी बुद्धि का उपयोग करना स्थगित कर दिया है। प्रजातंत्र में सत्तारूढ़ दल के विचार और कार्यों की पूरी जाँच पड़ताल होनी चाहिये और चिकित्सा भी। देश को अच्छे अधिनायक वाद की आवश्यकता है'।

शोलापुर से लौटने के बाद उन्होंने विधान सभा भवन तक किसानों का एक मोर्चा निकाला। यह मोर्चा आजाद मैदान में पहुँचकर सभा में बदल गया। वहाँ उन्होंने ओजस्वी भाषण में कहा, 'इस जगत में दो ही श्रेणियाँ हैं - एक शोषक और दूसरी शोषित। मजदूरों और किसानों को जातिवाद रहित बुद्धि से संगठित होकर, विधान सभा में अपने प्रतिनिधियों को चुनकर भेजना चाहिये तभी उनका हित होगा'।

मई 1938 में उन्होंने विधि महाविद्यालय के प्राचार्य पद से त्यागपत्र दे दिया। महाविद्यालय की मासिक पत्रिका में उनके कार्यों की प्रशंसा में लिखा था 'डॉ. भीमराव जी अम्बेडकर के ज्ञान और कार्यकौशल के विषय में विद्यार्थियों में बहुत सम्मान था। उनके व्याख्यान अध्ययन का निचोड़ और मनोयोग पूर्ण होते थे। विधि शास्त्र के विषय में उनके विचार सदैव क्रांतिकारी हुआ करते थे'।

7 नवम्बर 1938 की संध्या को औद्योगिक विवाद पर विधेयक के विरोध में कामगार मैदान में श्रमिकों की विशाल सभा हुई। उन्होंने हड़ताल की सफलता पर श्रमिकों का अभिनंदन किया, 'जब तक मजदूरों के हाथ में हुकूमत नहीं आती तब तक उनके सवाल भी नहीं सुलझाए जा सकते'।

29 जनवरी 1939 को 'गोखले अर्थशास्त्र संस्था' ने राज्य संघ योजना पर उन्हें भाषण देने के लिये आमंत्रित किया। उन्होंने दो घंटे के व्याख्यान में विशेष रूप से जोर डालते हुए कहा, 'इस राज्य

संघ शासन में रियासतों के प्रतिनिधि अंग्रेजों के एजेंट होंगे। वहाँ के निवासी केवल रियासती प्रजा रहेंगे। राज्य संघ का उन पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। यह एक खतरा है हमें केन्द्रीय शासन की प्रणाली चाहिये, रक्षा और वैदेशिक विभाग इस राज्य संघ के अधिकार में रहना चाहिये।' इस नियोजित राज्य संघ के कारण हमारा स्वराज्य नहीं रह पायेगा।

15 जनवरी 1940 को इंटरनेशनल फेलोशिप के सामने उन्होंने भाषण दिया, पेशवाओं के राज्यकाल में दुकान से कपड़ा खरीदते समय भी कपड़ा थान से काटने के बाद भी फाड़ कर दिया जाता था ताकि यह जाना जा सके कि खरीददार अस्पृश्य है।

अगस्त 1941 को सिन्नर नगर में वतनदार महारों के सम्मेलन में उन्होंने कहा कि किस प्रकार यह 'वतनदारी' नष्ट की जा सकती है, इस बारे में हमें क्या करना चाहिये। महार वतनदारों पर लगाया गया कर अगर वापस नहीं लिया गया तो फिर कर बंदी के लिये आंदोलन किया जायेगा।

14 अप्रैल 1942 को मुम्बई में स्वतंत्र मजदूर और अन्य 45 संस्थाओं ने मिलकर अम्बेडकर का जन्मोत्सव दस दिन तक धूमधाम से मनाया। स्थान-स्थान पर सभा सम्मेलनों में उनके दीर्घायु होने की हार्दिक शुभकामनायें की गईं। 19 अप्रैल 1942 को 'रोहितदास तरुण सुधारक संघ' के महिला मण्डल का उन्होंने उद्घाटन किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा, 'दूसरों की कृपा पर जीना मत सीखो, स्वावलंबी बनो। जिस तरह देवयानी का लोभ त्याग कर कच ने संजीवनी विद्या प्राप्त की और अंत में वह अपने दल से जा मिला, उसी प्रकार तरुणों को चाहिये कि वे अपने समाज को कभी न भूलें'। इसी वर्ष 'अखिल भारतीय दलित समाज' की स्थापना हुई और वे भारत गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् से लेबर सदस्य बने। 16 जनवरी 1943 को सूरत नगर में दलित समाज की ओर से उन्हें मानपत्र दिया गया। 29 जनवरी 1946 को कानपुर में अखिल भारतीय दलित समाज का दूसरा वार्षिक अधिवेशन हुआ। उसमें उन्होंने कांग्रेस पर करारी चोट करते हुये कहा, 'कांग्रेस एक धक्कता हुआ घर है। उसमें जाकर अपना और अपने समाज का नुकसान मत कीजिये'।

20 मई 1945 को उनके मित्रों ने मुम्बई के केप माडल जलपान गृह में उन्हें दावत दी। इस अवसर पर उन्होंने कहा, 'भारत की पूर्ण स्वराज्य के बदले औपनिवेशिक स्वराज्य भी पूर्ण स्वराज्य के ही समान है'।

दूसरों की सहायता पर जीना मत सीखो, स्वावलम्बी बनो - डॉ. अम्बेडकर

उन्हें यह अहसास होने लगा था कि दलितों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने 1946 में मुम्बई में सिद्धार्थ महाविद्यालय की स्थापना की थी। वे सन् 1942 से 1946 तक श्रममंत्री के रूप में कार्य करते रहे। इस अवधि के बीच उन्होंने श्रमिकों के लिये जो कानून बनाये और जो सुधार किये, वे अधिकांशतः मूलभूत स्वरूप के हैं। श्रमिकों के प्रश्नों को सुलझाने के लिये सरकार, स्वामी और श्रमिक तीनों के प्रतिनिधियों का त्रिपक्षीय मण्डल इन्हीं के कार्यकाल में बना। श्रम विभाग की स्थायी समिति पर उन्होंने ही तीन गैर सरकारी सदस्यों की नियुक्ति करवाई थी।

20 दिसम्बर 1946 को 'अखिल भारतीय दलित विद्यार्थी परिषद्' के शिक्षार्थियों को भेजे गए उपदेशात्मक संदेश में उन्होंने कहा था। दलित युवकों को जब कभी अवसर मिले तो वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करें कि वे बुद्धिमानी और योग्यता में किसी भी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा रती भर भी कम नहीं हैं। साथ ही, उन्हें सदा ही निजी स्वार्थ की ओर ध्यान न देकर अपने समाज को स्वतंत्र, शक्तिशाली बनाने का प्रयास करना चाहिये।

जुलाई 1947 के अंतिम सप्ताह में कांग्रेस दल ने मंत्रिमंडल गठन में संभावित मंत्रियों के नामों की सूची बनाई। पं. जवहारलाल नेहरू ने डॉ. भीमराव अम्बेडकर को बुलावा कर पूछा था कि क्या आप विधि मंत्री का पद स्वीकार करेंगे? उन्होंने इसकी स्वीकृति दे दी थी।

25 सितम्बर 1947 को उन्होंने सिद्धार्थ महाविद्यालय के वक्तव्य विभाग का उद्घाटन करते हुए कहा, 'वक्तव्य शक्ति प्राप्त करने के लिये शिक्षार्थियों को साधना करनी होगी। प्रयासों से असम्भव भी सम्भव है इसलिये भाषण देने की साधना करो'।

उन्होंने 'पाकिस्तान फॉर पार्टिशन ऑफ इंडिया' नामक ग्रंथ में हिन्दुस्तान से मुलसमानों और पाकिस्तान से हिन्दुओं के स्थानांतरण के विषय में सुझाव दिये थे। उन पर ध्यान न देने के कारण दोनों देशों के निरापराध लोग हत्याकांड के शिकार हुये। तब उन्होंने एक बयान प्रकाशित कराकर पाकिस्तान सरकार की निन्दा की और अस्पृश्य समाज को सलाह दी, 'वे जो भी रास्ता मिले, जो भी साधन सम्भव हो, किसी भी तरह हिन्दुस्तान पहुँच जाये। धर्मान्तरण करने वाले अस्पृश्यों को भी समाज में पुनः स्वीकार किया जायेगा'। अंत में अस्पृश्यों को वहाँ से छुड़ा लाने के लिये, 'उन्होंने नेहरू जी से अनुरोध किया कि वे महार रेजिमेंट को वहाँ

भिजवायें। इन सैनिकों ने लगभग 75,000 अस्पृश्य लोगों को असामाजिक तत्वों से छुड़वा कर हिन्दुस्तान पहुँचवाया।

फरवरी 1948 में सिर्फ छह मासों में ही उन्होंने संविधान का कच्चा मसौदा, संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सामने पेश कर दिया था। संविधान का मसौदा तैयार करने का दायित्व लेते ही उनका स्वस्थ्य तीव्रता से गिरने लगा। मस्तिष्क से संबंधित नस पीड़ा के साथ-साथ मधुमेह का कष्ट भी बढ़ता जा रहा था। अतः संविधान का कच्चा प्रारूप तैयार करके आराम करने के उद्देश्य से मुम्बई चले आये थे। नर्सिंग होम में ही उनके सम्पर्क में डॉ. शारदा कबीर आई। परिचय घनिष्ठता से बढ़ गया। 15 अप्रैल 1948 को प्रातः उन्होंने हार्डिंग एवेन्यू आवास में कुछ अतरंग मित्रों की उपस्थिति में डॉ. शारदा का कबीर से रजिस्टर्ड विवाह कर लिया।

इसी मास के अंतिम सप्ताह में उन्होंने उत्तर प्रदेश समाज परिषद की सभा में लोगों के भ्रम को दूर करने के लिये भाषण दिया, 'मैं सरकार में शामिल हो गया हूँ, कांग्रेस में नहीं। कांग्रेस तो भस्म होता हुआ घर है जो एकाध वर्ष में भस्म हो जायेगा। अपनी झोपड़ी छोड़कर दूसरे के महल में मत जाओ'।

4 नवम्बर 1948 को संविधान का प्रारूप संविधान सभा के सामने विचार हेतु प्रस्तुत किया गया। 315 अनुच्छेदों और 8 परिशिष्टों के संविधान की विशेषताओं का उन्होंने अपने शैलीप्रधान भाषण में विश्लेषण किया। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा, 'यह संविधान प्रत्यक्ष व्यवहार में लाने योग्य है। यह लचीला है, साथ ही शांति के दिनों में हो अथवा युद्ध के काल में हो, देश को एकता के सूत्र में बाँध रखने के लिये अत्यंत प्रभावी और सक्षम है।' 'यदि संविधान का सही तरह से अनुशरण नहीं हो पाया तो दोष संविधान का नहीं है किन्तु इंसान में बसे अवगुणों का है।'

15 जनवरी 1949 को उन्हें मनमाड नगर में थैली भेंट की गई थी। उस समय उन्होंने अपने भाषण में कहा था, 'कोई भी समाज शिक्षा के क्षेत्र में कितना आगे जाता है, इस पर ही उस समाज की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है'।

11 जनवरी 1950 को सिद्धार्थ महाविद्यालय की पार्लियामेंट के समक्ष भाषण देते हुए कहा, प्रस्तुत किया गया 'हिन्दू कोड बिल' प्रगतिशील कदम है। भारतीय संविधान में सारे देश के लिये एक ही नागरिक कानून तैयार करने के लिये प्रयत्नशील होने का सुझाव है। यह हिन्दू कोड बिल हिन्दुओं के धर्मशास्त्र पर आधारित है।

कोई भी समाज शिक्षा के क्षेत्र में कितना आगे बढ़ा, इस पर ही उस समाज की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता है — डॉ. अम्बेडकर

14 अप्रैल 1950 को सम्पूर्ण राष्ट्र में उनका जन्म दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। मई 1950 में नई दिल्ली में 'बुद्ध जयंती' मनाई गई। इस अवसर पर उनका भाषण अत्यंत महत्वपूर्ण था, 'बुद्ध के अलावा सभी धर्म संस्थापकों ने अपने आपको मोक्षदाता की भूमिका में रखा। इसके विपरीत बुद्ध ने अपने स्वयं में किसी भी देवी शक्ति की छाप न लगाकर स्वयं को एक राह दिखाने वाला कहा। बुद्ध का धर्म नीति धर्म है।'।

उन्होंने 'महाबोधि' नामक मासिक पत्रिका में 1951 में 'राइज एण्ड फाल ऑफ दि हिन्दू वीमेन' शीर्षक से एक लेख लिखा था। इसमें उन्होंने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया, 'बौद्ध काल में भारतीय महिलाओं को जो स्वतंत्रता मिली थी, उसे मनु ने नष्ट किया। बुद्ध ने महिलाओं को परिव्राजन या पिशुगी होने के लिये जो सम्मति दी, उससे नारी को विद्या प्राप्ति की स्वीधनता मिली। साथ ही उसे आत्मोन्नति की भी स्वतंत्रता प्राप्त हुई। परिणाम यह हुआ कि सारे समाज में युद्ध में एक क्रांति की ओर महिलाओं की स्वतंत्रता और इज्जत के साथ सम्मान भी मिला। किन्तु मनु ने बौद्ध धर्म में जाने वाली महिलाओं के प्रवाह को रोकने के लिये, उन पर तरह-तरह के बंधन लगा दिये और उन्हें परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ दिया था'।

उन्होंने अप्रैल 1951 में दिल्ली में अम्बेडकर भवन की आधारशिला रखी और सरकार पर आरोप लगाया कि उसने अस्पृश्यों के लिये कुछ नहीं किया। मई 1951 में दिल्ली के बुद्ध जयंती समारोह में भाषण देते हुये हिन्दू धर्म की कटु आलोचना की। 9 सितम्बर 1951 को उन्होंने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा औरंगाबाद में मिलिन्द महाविद्यालय की आधारशिला रखवाई। इंडियन बुद्धिस्ट सोसायटी की स्थापना भी उन्हीं के हाथों हुई थी।

उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी जिनमें 'दि एक्सेल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फायनेंस इन ब्रिटिश इंडिया', 'पाकिस्तान ऑर पार्टिशन ऑफ इंडिया', 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन करेंसी एण्ड बैंकिंग', 'अनटचेबल्स एण्ड इंडियन कोस्टिट्यूशन इंडियन पेपर नं. 4', 'हू वर दि शूद्र', 'एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड फायनेंस ऑफ इंडिया कम्पनी', 'बुद्ध और कार्लमार्क्स' आदि उल्लेखनीय हैं।

जनवरी 1952 के आम चुनावों में उन्हें चौदह हजार मतों से पराजय का मुख देखना पड़ा। पर वे स्वभाव से ही एक संसद विद्वान थे। अतः राजनीति से आलिप्त नहीं रहना चाहते थे। 1952 में मुम्बई विधान से राज्य सभा सदस्यों का चुनाव होना था। उन्होंने

उसके लिये अपना नामांकन पत्र भर दिया और वे सत्रह उम्मीदवारों में विजयी हुये। 1 मई 1952 में राज्य सभा के अधिवेशन में उपस्थित रहने के लिये मुम्बई से दिल्ली आये। वे 1 जून 1952 को 'डॉक्टर ऑफ लॉज' की उपाधि लेने के लिये न्यूयार्क गये। वहाँ उनके सम्मान में प्रशंसात्मक उल्लेख करते हुये उन्हें संविधान रचयिता, मंत्री मण्डल और राज्यसभा के माननीय सदस्य, भारत का प्रमुख नागरिक, महान समाज सुधारक और मानवीय अधिकारों का जुझारू प्रवर्तक कहा गया। वहाँ से वे 14 जून को स्वदेश लौटे।

24 दिसम्बर 1952 को उन्होंने कोल्हापुर स्थित राजाराम महाविद्यालय के विद्यार्थी स्नेह सम्मेलन में शिक्षाप्रद भाषण दिया, 'कोई भी प्रमुख महिला आज नारियों के उद्धार के लिये नेतृत्व लेकर जी जान से काम में भिड़ जाने को तैयार नहीं है। हिन्दू कोड बिल अब फटे दूध के समान दूषित हो गया है'।

अब तक देश के किसी भी विश्वविद्यालय ने उनके कार्यों की सराहना नहीं की थी। हैदराबाद का इस्लामिया विश्वविद्यालय पहला था जिसने 12 जनवरी 1953 को उन्हें मानद 'डॉ. ऑफ लिटरेचर' की उपाधि दी थी। मई 1953 में उन्होंने मुम्बई में पचास हजार लोगों के समक्ष भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण दिवस पर महत्वपूर्ण भाषण दिया। तत्पश्चात् अपना सारा जीवन बौद्ध धर्म के कार्य में लगा देंगे, इस निश्चय को दुहराया। 18 सितम्बर 1953 को 'स्टेड ड्यूटी बिल पर बोलते हुए कहा, दूसरों या परायों का अंधानुकरण कर कुछ नहीं सधेगा। जो कुछ यूरोप के लिये उचित होगा, वह भारत के लिये भी ठीक रहेगा, यह सम्भव नहीं है।' फिर उन्होंने चेतावनी दी, देश की पूँजी बढ़नी ही चाहिये पर पूँजीपति नहीं। 26 अगस्त 1954 को राज्यसभा में विदेश नीति की सख्त आलोचना थी। इन्हीं दिनों सरकार ने संविधान संशोधन का तीसरा विधेयक पेश किया। इससे वे गुस्से से भर उठे, कहा 'विश्व के इतिहास में किसी भी संविधान में इतनी जल्दी संशोधन नहीं सुझाए गये हैं। सिर्फ बहुमत के बल पर ही तरह की जल्दी करना संविधान का मजाक उड़ाने जैसा है। हमें संविधान और कानून में फर्क रखना चाहिये।

वे 'वर्ल्ड फेलोशिय ऑफ बुद्धिस्ट' नामक संस्था के तीसरे अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये दिसम्बर 1954 में रंगून गये। वहाँ उन्हें मांडले घुमाने के लिये ले जाया गया। वहीं पर उन्होंने महात्मा बुद्ध के 2500 वे जन्मोत्सव पर बौद्ध धर्म अंगीकार करने का निश्चय किया था।

यदि संविधान का सही तरह से अनुसरण नहीं हो पाया तो यह दोष संविधान का नहीं बल्कि इंसान में बसे अवगुणों का है – डॉ. अम्बेडकर

इतनी व्यस्तता और अस्वस्थता के बाद भी उनका लेखन कार्य दिन रात चलता रहता था। नानकचंद रत्न उनके निजी सचिव थे। 01 मई 1956 को उन्होंने राज्यसभा में भाषावार प्रदेश रचना पर चल रही चर्चा में भाग लिया था। 24 मई 1956 को नरे पार्क में बुद्ध जयंती पर विशाल सभा का आयोजन किया गया था। उस पर उन्होंने घोषणा की थी कि वे अक्टूबर 1956 में बौद्ध धर्म स्वीकार कर लेंगे।

11 अक्टूबर 1956 को वे अपनी पत्नी और रत्न को लेकर नागपुर पहुँचे। वहाँ उनके रहने की व्यवस्था सीतावर्डी के शाम होटल में की गई थी। उसके सामने महार बस्ती थी। वहाँ के सभी नौजवान कार्यकर्ता गोडबोले के मार्ग दर्शन में दीक्षा समारोह की तैयारी में लगे थे। इस होटल के पास में ही बौद्ध जन समिति का कार्यालय था। 13 अक्टूबर 1956 की संध्या को प्रेस कांफ्रेंस की। उन्होंने संवाददाताओं से कहा, 'मैंने गाँधी जी को आश्वासन दिया था कि मैं हिन्दू धर्म को कम से कम हानि पहुँचाने वाला मार्ग अपनाऊँगा। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही अंग है'।

अगले दिन स्नान कर सफेद बंगाली कुर्ता और महीन धोती पहनकर, महास्थविर चंद्रमणी और भाई साहब अम्बेडकर के साथ ठीक नौ बजे समारोह के स्थान पर पहुँचे। चित्रकार राम तिरचुड़े ने मंच के समक्ष साँची के स्तूप का नमूना खड़ा किया था। मंच के समाने लगभग पाँच लाख नर-नारी बैठे हुए थे। जयघोष की समाप्ति पर उन्होंने पत्नी के साथ खड़े कोकर भिक्षु चंद्रमणी से प्रिसंरज पंचशील ग्रहण कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। तत्पश्चात् बुद्ध की प्रतिमा को सफेद कमलों का पुष्पाहार पहनाकर, उन्होंने नतमस्तक हो तीन बार नमस्कार किया। तत्पश्चात् उन्होंने मराठी भाषा में त्रिसंरण-पंचशील को पुनः ग्रहण किया तथा स्वयं तैयार की हुई बाईस प्रतिज्ञाएँ लीं। श्री वली सिन्हा ने उन्हें बुद्ध की प्रतिमा भेंट की। इसके बाद तो लाखों लोगों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की थी।

14 नवम्बर 1956 को विश्व बौद्ध परिषद के निमंत्रण पर काठमांडू गये। 15 नवम्बर को सिंह दरबार हाल में नेपाल नरेश महेन्द्र ने परिषद का उद्घाटन किया। इसकी अध्यक्षता लंका के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. मल्लेशेखर ने की थी। उन्होंने वहाँ उपस्थित विद्वानों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'बौद्ध केवल धार्मिक विधि का धर्म न होकर सामाजिक जीवन का तत्त्व ज्ञान है।'।

वहाँ से लौटते हुये डॉ. भीमराव अम्बेडकर सभी बौद्ध तीर्थों

को देखने के लिये गये। अंत में वे भगवान् बुद्ध के कुशीनगर स्थित निर्वाण स्थान को देखकर 30 नवम्बर 1956 को दिल्ली लौटे।

1 दिसम्बर 1956 को उन्होंने मथुरा रोड पर प्रदर्शित बुद्धकला प्रदर्शनी देखी। 2 दिसम्बर 1956 को वे अशोक विहार में दलाईलामा के स्वागत समारोह में सम्मिलित हुये। अगले दिन उन्होंने आत्मीयजनों के साथ फोटो खिंचवाये। 4 दिसम्बर 1956 को कुछ देर तक राज्यसभा में भी उपस्थित रहे। उसी संध्या को उन्होंने रत्न को दो पत्र लिखवाये। 5 दिसम्बर 1956 की रात्रि को कुछ जैन मुनि उनसे भेंट करने के लिये आये। उनसे जैन एवं बौद्ध धर्म पर चर्चा हुई। अगले दिन के लिए कार्यक्रम का निमंत्रण देकर वे विदा हुये। तत्पश्चात् वे 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का जाप करते रहे।

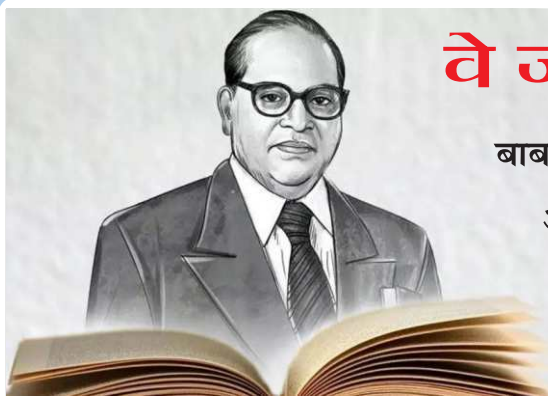
6 दिसम्बर 1956 को जब माई साहब उन्हें जगाने के लिये गईं तो उन्हें पता चला कि वे इस दुनिया से कूच कर गये हैं। उन्होंने गाड़ी भेजकर रत्न को बुलवाया। रत्न ने सभी परिचितों और केन्द्रीय मंत्रियों को उनके निधन का दुःखद समाचार दिया। प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू स्वयं उनके बंगले पर आये और संवेदना देते हुये खोज खबर ली। तत्पश्चात् तो मंत्रीगण, समाज सेवी, आत्मीयजन और लोगों का 26 अलीपुर रोड पर ताँता लग गया। संध्या समय शवयात्रा सुसज्जित ट्रक पर संसद भवन होती हुई हवाई अड्डे पर पहुँची। उनके शव के साथ रत्न, सोहनलाल शास्त्री, आनंद कौशल्यायन, यशवंतराव और माई साहब आदि ग्यारह लोग डकोटा हवाई जहाज से मुम्बई गये। राजगृह पहुँचते पहुँचते दिन निकल गया। लाखों लोगों ने पंक्ति बद्ध खड़े होकर उनके अंतिम दर्शन किये। लगभग 3.00 बजे उनकी अंतिम यात्रा आरम्भ होकर दादर की शमशान भूमि में पहुँची। वहाँ पर 7.30 बजे राजकीय सम्मान व बौद्ध मंत्रों के उच्चारण के साथ यशवंतराव अंबेडकर ने चिता को अग्नि दी। सहस्रों लोग फूट-फूटकर रो पड़े और चिता के सामने लगभग 50 सहस्र लोगों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

भारत सरकार ने उनके 99 वें जन्म दिवस पर सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान 'भारत रत्न' सम्मानित किया। न्याय व मानवता के मसीह की अब 130 वीं जन्म-जयंती मनाई जा रही है। इस अवसर पर प्रस्तुत पुस्तक आधुनिक युग के मनु और भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पी को मेरी सच्ची श्रद्धांजलि के रूप में समर्पित है।

साभार - श्रीशरण

प्रेम प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली

जब तक मजदूरों के हाथ में हुकूमत नहीं आती तब तक उनके सवाल भी नहीं सुलझाए जा सकते - डॉ. अम्बेडकर



वे जानते थे पसीने का मोल

बाबा साहेब श्रमिक वर्ग के अधिकारों के लिये सतत् संघर्षरत रहे।

अगस्त 1936 में उन्होंने स्वतंत्र मजदूर दल नामक एक नया राजनीतिक दल स्थापित किया। बाबा साहेब ने कहा - मजदूरों की समस्या के बारे में मुझे सूक्ष्म जानकारी है।

किसी भी महापुरुष के प्रारंभिक जीवन की चुनौतियों, परिस्थितियों, समय एवं स्थान का प्रभाव उसके विचारों से स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ऐसे कालखंड में जब भारत में मजदूर आंदोलन कुछ महत्वपूर्ण दौर में था। उस समय बाबा साहेब ने श्रमिक वर्ग के अधिकारों तथा उनकी परिस्थितियों के प्रति उन्हें जागरूक किया एवं इसके लिये वे सतत् संघर्षरत रहे।

1920 के दशक में भारत में कम्युनिस्ट मजदूर संगठनों का प्रभाव था। इन संगठनों ने मुम्बई के कपड़ा मिल मजदूरों का 1924 1925, 1928 एवं 1929 में मिलों में हड़ताल के लिये आह्वान किया। 43 कपड़ा मिलों के लगभग 75,000 कर्मचारियों ने हड़ताल में हिस्सा लिया। इसके बाद दूसरे बड़े आंदोलन के तहत श्रमिकों ने अप्रैल 1934 में कपड़ा मिलों में हड़ताल की।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने 'बहिष्कृत भारत' तथा 'जनता' पत्रों के माध्यम से श्रमिकों को इन हड़तालों से दूरी बनाये रखने को कहा। क्योंकि यह राजनीति प्रेरित थीं एवं श्रमिकों को आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति ऐसी नहीं है कि इन हड़तालों पर जायें क्योंकि इससे उन्हें तुरंत भुखमरी का सामना करना पड़ता है। सो, कम्युनिस्टों ने डॉ. अम्बेडकर को मजदूरों का शत्रु घोषित कर दिया था।

स्वतंत्र मजदूर दल - 1937 के प्रारम्भ में भारत सरकार के 1935 के कानून के अनुसार प्रांतों को स्वायत्तता मिलने और नया राज्य शासन शुरू होने की सम्भावना से हर दल चुनाव लड़ने की तैयारी में था। डॉ. अम्बेडकर ने भी सहयोगियों से विचार कर अगस्त 1936 में स्वतंत्र मजदूर दल स्थापित किया। उन्होंने उसका घोषणा पत्र भी जारी किया जिसमें आश्वासन दिया गया कि श्रमिकों के लिये कानून बनाना, नौकरियाँ देना, पदच्युत करना, कारखानों में बढ़ती देना, काम के अधिकतम घंटे व वेतन श्रेणी, छुट्टी देना, सस्ते और

आरोग्यदायी आवासों की व्यवस्था इत्यादि के बारे में कानून बनाये जायेंगे।

रेलवे मजदूरों का संगठन - 12 फरवरी 1938 को मनमाड में अस्पृश्य रेलवे मजदूरों की एक परिषद में 20,000 मजदूरों की उपस्थिति में बाबा साहेब ने कहा - किशोरावस्था में मैंने अपने रिश्तेदारों को खाने के डिब्बे पहुँचाने का काम किया था। मजदूरों की समस्या के बारे में मुझे सूक्ष्म जानकारी है उन्होंने कहा "आज तक हम अस्पृश्य या दलित के रूप में इकट्ठा हुये हैं। कहा जाता है कि मैं मजदूरों का दुश्मन हूँ। वास्तव में पूँजीवाद ही मजदूरों का दुश्मन है। स्वतंत्रता, समता और बंधुभाव का अभाव यानी पूँजीवाद"।

अस्पृश्य मजदूरों की समस्या - डॉ. साहेब कहते हैं कि ऐसी अनेक नौकरियाँ होती है जहाँ अस्पृश्यता के कारण अस्पृश्य मजदूरों को उनसे अलग किया जाता है। कपड़ा मिलों में कुछ विभागों में अस्पृश्य मजदूर नहीं लिये जाते। रेलवे में तो गैंग मैन् की नौकरी में सड़ते रहना उनकी तकदीर है इतना ही नहीं कुली भी नियुक्त नहीं किया जाता, अस्पृश्य मजदूरों को सबसे कम मजदूरी पर रखा जाता है, कोई उन्नति नहीं होती। किन्तु जैसे ही मंदी आती है, उनको सबसे पहले निकाला जाता है और जब माँग बढ़ती है तब सबसे अंत में रोजगार मिलता है।

कार्लमार्क्स का सिद्धांत भारत में अनुपयुक्त - बाबा साहेब बताते हैं कि जिस प्रकार कार्लमार्क्स ने समाज को मालिक तथा मजदूर के नाम से दो वर्गों में बाँटा था। भारतीय परिस्थितियों में यह नितांत गलत है। इस तरह का विभाजन भारत में नहीं हो सकता। सभी मजदूरों को मिलाकर एक वर्ग समूह बन जाता है, वह यहाँ सम्भव नहीं है। हम सभी मजदूरों को मिलाकर एक संगठित समूह वहाँ कैसे बना सकते हैं? मजदूरों के अंदर एक सामूहिक एकता

दुनिया में कोई भी दैवीय गुण लेकर पैदा नहीं होता। स्वयं उसके ही प्रयत्नों से उसकी उन्नति होती है या अवनति होती - डॉ. अम्बेडकर

लाने के लिये उनको यह समझाना होगा कि उनके आपस की जो सामाजिक दूरियाँ और अशुद्ध भेदभाव हैं, वे दूर होना चाहिये। मैंने किसी भी श्रमिक नेता को इस सामाजिक भेदभाव के विरोध में बोलते हुये नहीं देखा। कम्युनिस्टों द्वारा चलाये गये मजदूर आंदोलन के बारे में उन्होंने कहा, 'मेरा कम्युनिस्टों से संबंध रखना बिल्कुल सम्भव नहीं है। मैं कम्युनिस्टों का कट्टर दुश्मन हूँ। उनका ठोस मत था कि कम्युनिस्ट राजनीतिक ध्येय सिद्धि के लिये मजदूरों का शोषण करते हैं।

कांग्रेस के साथ मत भिन्नता - 16 मई 1938 को चिपलूण की सभा में उन्होंने का कि गाँधी की मोहिनी विद्या मुझ पर प्रभाव नहीं डाल सकी। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस गाँधी जी की शरण में गये लेकिन गाँधी की शरण में कभी नहीं जाऊँगा। अगर किसी समय कांग्रेस में गया तो खुद की गुणवत्ता से वहाँ भी प्रभाव डालूँगा।

पिछले दस मास से मेरा खोती उन्मूलन विधेयक कांग्रेस ने जान बूझकर पीछे छोड़ रखा है। इसी दरम्यान मध्य प्रांत से कांग्रेस के बड़े नेताओं में डॉ. खरे को एक हरिजन मंत्री के बतौर लेने का कड़ा विरोध किया। सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसायटी में आयोजित सभा की अध्यक्षता करते हुये डॉ. खरे ने कहा बहुमत के कारण राज्य शासन चलाने वाला दल भ्रष्ट बनता है अपरिमित बहुमत से यह पूरी तरह समाप्त हो जाता है। इस राजनीतिक सुक्ति की उन्होंने सभी को याद दिलाई।

औद्योगिक कलह विधेयक 1938 - 15 सितम्बर 1938 को मुम्बई विधानसभा में यह विधेयक प्रस्तुत किया गया जिसका विरोध करते हुये डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यह नया कानून मजदूरों द्वारा की जाने वाली हड़तालों को गैर कानूनी बताकर प्रतिबंध लगा देगा, यह उचित तरीका नहीं होगा।

यह विधेयक श्रमिकों के मौलिक अधिकारों का हनन करेगा और यह असंवैधानिक है। डॉ. अम्बेडकर जी ने उस समय की अन्य मजदूर यूनियनों के साथ मिलकर संघर्ष कर हड़ताल की और सफलता प्राप्त की।

इस कार्य के लिये उन्होंने कम्युनिस्टों की शक्ति को भी साथ लेकर मजदूरों का हड़ताल के लिये आह्वान किया लेकिन कांग्रेस मंत्रीमण्डल ने ठान लिया था कि यह विधेयक किसी भी हालत में मंजूर कर लेना है और उन्होंने विधानसभा से उसे मंजूर कर ही लिया। कांग्रेस की इस दुराग्रही वृत्ति का मजदूर संघों ने "काला

कानून" कहकर विरोध किया।

7 नवम्बर 1938 को स्वतंत्र मजदूर दल और मिल मजदूर यूनियन एवं अन्य 60 विभिन्न मजदूर संघों ने मिलकर हड़ताल का शंखनाद किया।

हड़ताल के दिन पहले सायंकाल लगभग 80,000 मजदूरों की एक प्रचण्ड सभा मजदूर मैदान, मुम्बई में हुई उसकी नियंत्रण समिति में जमनादास अध्यक्ष व डॉ. अम्बेडकर, डांगे, निमकर मिरजकर और प्रधान इस समिति के सदस्य चुने गये। 90 प्रतिशत स्वयंसेवक अम्बेडकर के स्वतंत्र मजदूर दल के ही थे। 7 नवम्बर की हड़ताल का महत्व इतना बढ़ गया कि संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के विख्यात किसान नेता स्वामी सहजानंद डॉ. अम्बेडकर से मुम्बई में उनके निवास स्थान पर मिलने आये। उन्होंने उनसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एकता के लिये कांग्रेस के साथ मिलने का आग्रह किया।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा - कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ युद्ध पुकारा होता, तो मैं उस दल से मिल जाता, लेकिन यथार्थ में ऐसा नहीं है। कांग्रेस दल अपने हाथ में आये संविधानात्मक शासनतंत्र को पूँजीवाद और निरंतर स्वार्थ में लिप्त लोगों के कल्याण के लिये ही कार्यान्वित कर रहा है। उसने किसान मजदूर के कल्याण की बलि दे दी है। इस तरह के संगठनों में मैं शामिल नहीं हो सकता।

संविधान निर्माता के पूर्व श्रम मंत्री - बाबा साहेब अम्बेडकर 1942-1946 के काल में वायसराय की काउंसिल में श्रम मंत्री के रूप में कार्य करते रहे। इस समिति कालखण्ड में बाबा साहेब ने दलित श्रमिक वर्ग के कल्याण हेतु अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

श्रम मंत्री के रूप में उन्होंने मजदूर तथा मालिकों को



ज्ञान मानव के जीवन का आधार है उसकी प्राप्ति के लिये उसे हर सम्भव प्रयास करना चाहिये - डॉ. अम्बेडकर

मिलाकर औद्योगिक क्षेत्र के लिये नई-नई नीतियाँ स्थापित की। इनमें से प्रमुख हैं -

1. मजदूरों की सामाजिक सुरक्षा हेतु नीतियाँ।
2. श्रम नीति के नियमों को लेकर श्रमिकों एवं उद्योग मालिकों के मध्य विचार विनिमय की योजनायें।
3. श्रम कानूनों को ठीक प्रकार से तैयार करके उनको उचित ढंग से लागू करना। मजदूर तथा मालिक के झगड़ों को ठीक प्रकार से निपटाने का प्रयास।

बाबा साहब चाहते थे कि सरकार की श्रम नीति निश्चित करने में मजदूरों का सहभाग होना चाहिये। श्रम मंत्री के रूप में उनके कार्यकाल (1942-1946) में चार त्रिपक्षीय सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में मजदूरों के जीवन स्तर को उठाने के लिये इन सुविधाओं पर विचार-विमर्श किया गया -

1. मजदूरों का न्यूनतम वेतन
2. काम में घंटे फैक्ट्री एक्ट के अनुसार
3. मजदूरों की भविष्य निधि
4. अधिक समय तक कार्य के बदले अतिरिक्त समय की व्यवस्था

5. सस्ते मूल्य के अनाज की व्यवस्था

6. कारखानों में जलपान गृह

7. विश्राम आदि की सुविधायें

अपने इन न्यूनतम पाँच वर्षों के कार्यकाल में उन्होंने मजदूरों के हित में 25 कानूनों को क्रियान्वयन करवाया। उन्हीं के प्रयासों से मुख्य श्रम आयुक्त, प्रदेश श्रमायुक्त, श्रम निरीक्षक की नियुक्तियाँ प्रारम्भ हुई।

श्रम मंत्री के नाते बाबा साहेब ने जो कार्य किया, दुर्भाग्य से उसका योग्य मूल्यांकन नहीं हो सका। महिलाओं के लिये भी उन्होंने अनेक सुविधायें तथा मातृत्व अवकाश के रूप में अवकाश देने का प्रावधान रखा। बाबा साहेब ने 1928 के मेटेरनिटी बेनिफिट बिल के पक्ष में विचार रखे।

आज भी बाबा साहेब के विचार व कार्य मजदूरों के बीच में तथा पूरे संगठित क्षेत्र एवं असंगठित क्षेत्र में सभी के लिये प्रासंगिक हैं। उस परिप्रेक्ष्य में हम आज की परिस्थितियों में कैसा तादात्म्य बैठा सकते हैं, यह विचार का विषय है।

साभार - पाँचजन्य

बाबा साहब का पुस्तक प्रेम

एक बार डॉ. भीमराव 500 रुपये की पुस्तकें खरीद लाए। रमाबाई को पुस्तकें दिखाई और एक पुस्तक पढ़ने लग गए। उधर रमाबाई ने खाना परोसा और खाना खाने के लिए कहा। उस समय पुस्तक के 2-3 पृष्ठ बाकी बचे थे। डॉ. अंबेडकर पूरी पुस्तक पढ़कर ही भोजन करना चाहते थे। इधर रमाबाई पुस्तकों को देख रही थी



और मन में राशन की चिंता सता रही थी। पुस्तक खत्म होने के बाद रमाबाई ने बाबा साहब से कहा - आप 500 रुपये की पुस्तकें खरीद लाए। आपको घर में आटा, नमक, तेल, सब्जी आदि का भी तो ध्यान रखना चाहिए। अपने बच्चों की तरफ भी तो देखो। इस बात का बाबा साहब के मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दूसरे दिन कोर्ट से आते समय बाबा साहब बहुत सारी सब्जियां खरीद लाए। बड़े दिनों बाद घर में सब्जी आते देखकर रमाबाई बहुत खुश हुईं परंतु यह सोचकर बड़ी दुखी भी हुई कि 2-3 दिन बाद सब्जियां सड़ जाएंगी। क्योंकि बाबा साहब को पता नहीं था कि घर में कितनी सब्जी लगती है। उन्होंने भोजन करने में कभी

कोई शिकायत नहीं की। उनका मिशन तो अपने करोड़ों दलित भाई-बहनों के उद्धार के लिए काम करना था। रमाबाई भी कर्मठता की मूर्ति थी। वह अपने पति के सभी कार्यों में यथा संभव सहयोग करती थी। आगे चलकर बाबा साहब ने पुस्तकों के लिए बम्बई में एक घर बनवाया जिसका नाम 'राजगृह' रखा गया।

किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कार्य करने के लिये बाध्य करने का नाम ही गुलामी है - डॉ. अम्बेडकर

**बाबा साहेब का
मूल्यांकन करते समय
इस ऐतिहासिक तथ्य
को अक्सर अनदेखा
किया गया कि
वे भारत के सबसे
शुरूआती आर्थिक
चिंतकों में से एक थे,
जिन्होंने देश की अर्थ
व्यवस्था के कई पक्षों
पर मौलिक व सार्थक
चिंतन प्रस्तुत किया।**

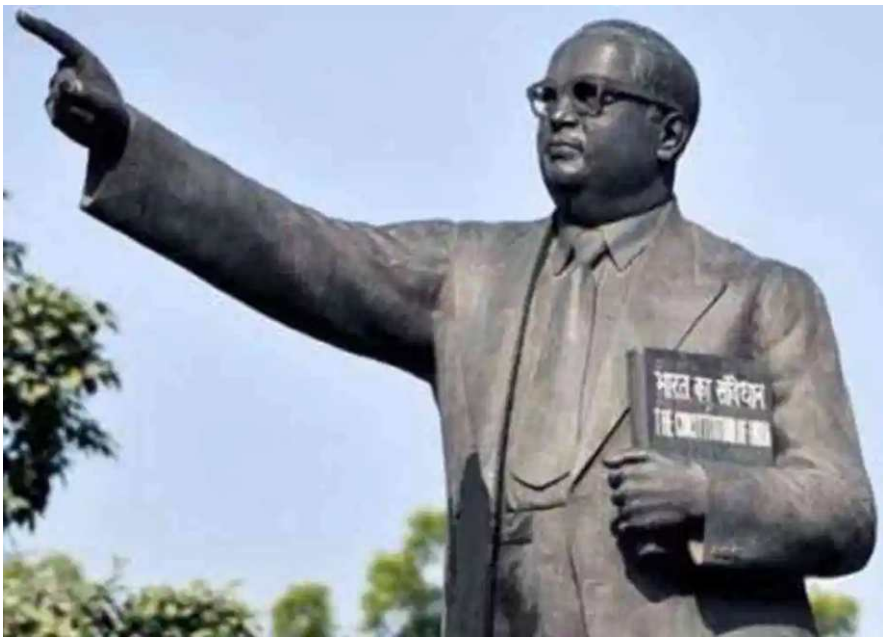
उठाया सौ टके का सवाल

देश के सामाजिक जीवन तथा भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का इतना अधिक योगदान है कि एक प्रखर अर्थशास्त्री के रूप में उनकी पहचान उजागर ही नहीं हो पाई। शोषित व पीड़ित के सामाजिक न्याय के लिये सतत् संघर्षशील रहने के कारण उनकी पहचान भी शोषित व पीड़ितों के नेता के रूप में बनी और लोगों में उनकी वही छवि लोकप्रिय है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर 20वीं सदी में अर्थशास्त्र की एडवांस ट्रेनिंग करने वाले गिने चुने विद्यार्थियों में एक

नमक कर, स्टाम्प ड्यूटी जैसे घातक करों के कारण उत्पन्न हुई आर्थिक पद्धति की खामी, शिक्षण पर खर्च की जाये, गैर उत्पादन खर्च पर ध्यान दिलाया गया है और सौंपे गये काम, सौंपी गई आवक एवं विभाजनयुक्त आर्थिक योजना के साथ-साथ आर्थिक विकेन्द्रीकरण के जरिए गरीबों के उद्धार पर जोर दिया गया है।

उभरते युवा अर्थशास्त्री - डॉ. अम्बेडकर ने वर्ष 1917 में 26 वर्ष की उम्र में अर्थशास्त्र में शोध किया। उनके शोध का विषय 'नेशनल डिविडेंड ऑफ इंडिया - ए हिस्टोरिक एण्ड एनालिटिकल स्टडी' था, इसमें ब्रिटिश शासन की आलोचना होने से अवरोधों के बीच 1925 में 'इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' नाम से उनकी पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में ब्रिटिश सरकार की आर्थिक पद्धति के सम्पूर्ण केन्द्रीयकरण एवं सरेआम इसकी निष्फलता का तथ्यात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। डॉ. अम्बेडकर ने केन्द्र व राज्यों के बीच आर्थिक संबंधों के साथ कई अहम पहलुओं को भी उजागर किया। उनकी दलील थी कि रेलवे, रोड, कैनाल जैसे सार्वजनिक सुविधा वाले कामों पर किसी भी दलीय व्यवस्था की ओर से किये गये खर्च के आधार पर उसका आकलन हो। क्योंकि सन् 1834 से 1848 के दौरान ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से भारत में किया

थे। 20 जुलाई 1913 से उन्होंने अमरीका की कोलंबिया यूनिवर्सिटी से अपनी पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई शुरू की थी। पोस्ट ग्रेजुएशन में उनका विषय 'एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ फाइनेंस ऑफ ईस्ट इंडिया कम्पनी 1792 से 1822' था, जिसमें कम्पनी के अंधाधुंध शोषण के कारण भारत की आर्थिक दयनीयता में बढ़ोत्तरी होने का सजीव चित्रण था। उनके शीर्ष ग्रंथ - 'द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविंशियल फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' में वंचितों को लेकर उनकी वेदना स्पष्ट नजर आती है। यह पुस्तक ब्रिटिश इंडिया के सन् 1833 से 1921 के बीच केन्द्र व राज्यों के बीच आर्थिक संबंधों को उजागर करती है। इसमें भूमिकर,



जो भी जागृत है, संघर्ष करता है, उसे अंत में स्थायी न्याय मिल सकता है - डॉ. अम्बेडकर

गया सम्पूर्ण खर्च मैनचेस्टर शहर की जलपूर्ति पर किए गये खर्च से कम था।

इस तथ्य को उजागर कर अम्बेडकर ने ब्रिटिश लोगों की ओर से भारतीयों पर किए जाने वाले अन्याय का पर्दाफाश किया। उन्होंने विस्तार से बताया कि सन् 1858 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त करने के बाद उसकी भारत की देनदारी का सारा भार कम्पनी की कारस्तानी से भारत के गरीबों पर लाद दिया गया।

स्वर्ण आदान-प्रदान व्यवस्था - प्रख्यात अर्थशास्त्री जॉन मिनार्ड केन्स

एवं अन्य मुख्य अर्थशास्त्रियों के मतानुसार स्वर्ण आदान-प्रदान व्यवस्था भारत के लिये आदर्श चलन के मापदण्ड से ठीक थी। उनके मतानुसार सोने की आवक से स्वर्ण आदान-प्रदान प्रभावित नहीं होगा। कारण यह कि लेन-देन में खुलापन देश के भावी विकास के लिये वांछनीय होता है। डॉ. अम्बेडकर ने भी इस व्यवस्था को स्वीकार किया लेकिन यह भी कहा कि वह मिश्रित आशीर्वाद है। उन्होंने करेंसी को छापने वाले तंत्र के विवेकाधिकार पर नियमन रखने की व्यवस्था पर जोर दिया, उनके मतानुसार स्वर्ण विनिमय व्यवस्था ऐसी कोई गारंटी नहीं देती। वह मंहगाई को बढ़ाती है और सामाजिक व आर्थिक स्थिरता के लिये खतरा होने के बाद गरीबों का सबसे अधिक नुकसान करती है। इस बात से केन्स जैसे अर्थशास्त्री को दो टूक कह सकने वाले डॉ. अम्बेडकर की ओजस्विता का अनुमान लगाया जा सकता है। हकीकत में अम्बेडकर देश की जमीन से जुड़े अर्थशास्त्री थे। इसलिये उनकी बातों से अर्थशास्त्र के बड़े-बड़े सिद्धांतों के बजाए देश की आर्थिक वास्तविकता, लोगों की स्थिति पर आधारित अर्थशास्त्र छलकता था।

दामोदर घाटी परियोजना - वर्ष 1942 में डॉ. अम्बेडकर वायसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य थे। यह एक मंत्री स्तर का पद था जिसका उल्लेख डॉ. अम्बेडकर रोल ऑन इकोनॉमिक प्लानिंग पुस्तक में मिलता है। इसमें उन्होंने पाँच कॉन्फेंस को संबोधित किया है। जिसमें दो दामोदर वैली प्रोजेक्ट, एक महानदी

डॉ. अम्बेडकर ने चार दशक पहले ही उदारीकरण की नीति की हिमायत की थी। मगर उनकी यह शर्त थी कि यह भारतीय रूपये के अवमूल्यन की कीमत पर न हो। उनका स्पष्ट मानना था कि विनिमय दर ऊँची नीची हो लेकिन राष्ट्रीय मुद्रा स्थित रहे। लेकिन उनकी चिंता को समझे बिना विभिन्न सरकारों ने भय के मारे उदारीकरण की नीति को लागू करने में देरी की।

एवं दो इलेक्ट्रिक पावर के लिये थी। इसके अलावा बिहार व पश्चिम बंगाल को प्रभावित करने वाले कई बहुउद्देश्यों वाले दामोदर वैली प्रोजेक्ट में उनका अमूल्य योगदान था। बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, पेयजल एवं विद्युत उत्पादन इस प्रोजेक्ट के मुख्य सेतु थे। डॉ. अम्बेडकर के अथक प्रयासों से ही दामोदर वैली बिल को दिसम्बर 1947 में संविधान सभा में लाया जा सका और फरवरी 1948 में पारित किया गया था। दो-दो राज्यों व केन्द्र सरकार के बीच डॉ. अम्बेडकर के अद्भुत कार्य

निष्पादन से ही चार वर्ष से कम समय में यह प्रोजेक्ट पूरा हो सका और 'रिवर ऑफ सॉरो' मानी जाने वाली दामोदर नदी बिहार व प. बंगाल के लिये वरदान बनी। आजाद भारत का यह सफलतम प्रोजेक्ट था जिनकी सफलता का श्रेय डॉ. अम्बेडकर को जाता है।

कृषि का राष्ट्रीयकरण - डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के कृषि संबंधित विचार उनके 'स्माल होल्डिंग इन इंडिया एण्ड देयर रमेडीज 1917' लेख में देखने को मिलते हैं, जो इंडियन इकोनॉमिक सोसायटी के वर्ष 1918 के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'स्टेट्स ऑफ माइनोरिटीज' 1947 के अंक में भी उनके कृषि विषय संबंधी विचार प्रकाशित हुये। उनके द्वारा स्थापित स्वतंत्र मजदूर दल के घोषणापत्र में शामिल बाबा साहेब का कृषि ज्ञान ऐसा है जो आँख खोल दे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार देश में जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ों पर हो रही खेती बड़ी समस्या है। इससे अधिकांश जमीन बेकार पड़ी रहती है व खाद्य आवक भी अपूर्ण होती है। इसके बदले आर्थिक व व्यावसायिक खेती को अपनाया चाहिये।

डॉ. अम्बेडकर के मतानुसार खेती की उत्पादकता केवल जमीन के आधार पर ही नहीं बल्कि अन्य परिबल पूँजी श्रम व अन्य आवश्यकताओं से भी प्रभावित होती है। उनकी प्रेरणा से ही बाद में 'लैंड सीलिंग एक्ट' को अमल में लाया गया।

खेती के बारे में उनकी सलाह :-

1. खेती का राष्ट्रीयकरण



स्वर्ण विनिमय व्यवस्था महंगाई बढ़ाती है और सामाजिक व आर्थिक स्थिरता के लिये खतरा होने के साथ गरीबों को सबसे अधिक नुकसान करती है नोबेले से सम्मानित अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने डॉ. अम्बेडकर को अर्थशास्त्र में अपने पितातुल्य माना है।

2. सामूहिक अथवा सहकारी खेती
3. खेती में खेत पद्धति का उन्मूलन
4. खाद, बीज व सिंचाई सरकार की ओर से हो
5. बजट में खेती के लिये अधिक बजट
6. निजी साहूकारों पर नियंत्रण

डॉ. अम्बेडकर के विचार आज भी प्रासंगिक हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता भारतीय अर्थशास्त्री डॉ. अमर्त्य सेन ने डॉ. अम्बेडकर को अर्थशास्त्र में अपने पितातुल्य माना है।

औद्योगिक विकास पर विचार - डॉ. बाबा साहेब का स्पष्ट रूप से मानना था कि देश का गतिशील विकास औद्योगिक विकास के बिना सम्भव नहीं है। तेजी से होने वाला औद्योगिक विकास रोजगार बढ़ाएगा, साथ ही विदेशी पूँजी की भी बचत करेगा। सरकार को सामाजिक व राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा करने के लिये आगे आना चाहिये। इसी के चलते 50 के दशक में बीएचईएल, एचईएल, ओएनजीसी, एसएआईएल जैसी महाकाय औद्योगिक इकाइयों की स्थापना हुई। बीमा एवं वाहन व्यवहार का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये। ऐसा उन्होंने 1944 में कहा था। उसी का अनुपालन करते हुये जीवन बीमा का 1956 में तथा सामान्य बीमा का 1980 में

राष्ट्रीयकरण हुआ।

हिन्दू कोड बिल - देश की महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिये डॉ. अम्बेडकर के खूब मेहनत से तैयार किये गये हिन्दू कोड बिल को अक्टूबर 1948 में सदन में पेश किया गया। पैतृक सम्पत्ति में महिलाओं की समान हिस्सेदारी की वकालत करने वाले इस बिल में उनके हितों से जुड़े कई प्रावधान थे, जिसमें भरण-पोषण, स्त्री धन में एकरूपता आदि शामिल थे लेकिन सदन में यह बिल पारित नहीं होने पर डॉ. अम्बेडकर ने कानून मंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया।

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना - वर्ष 1926 में भारत यात्रा पर आये हिल्टन यंग कमीशन जो इस दौरान आर्थिक व्यवस्था में एकरूपता पर अध्ययन कर रहा था के सभी सदस्यों के हाथ में डॉ. अम्बेडकर की 'द प्रॉब्लम ऑफ रूपीज इट्स ओरिजन एण्ड इट्स सॉल्यूशन' पुस्तक थी। बाबा साहेब ने आयोग के समक्ष ब्रिटिश शासन की खामीयुक्त व्यवस्था का विवरण दिया था। जिसमें उन्होंने धन का नियमन सरकार के बजाये एक स्वायत्त संस्था के माध्यम से होने का सुझाव दिया था। बस यहीं से रिजर्व बैंक की स्थापना की नींव रखी गई और आरबीआई एक्ट 1934 के जरिये रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया की शुरुआत हुई।

श्रम मंत्री के रूप में योगदान - दिनांक 27 नवम्बर 1942 को भारतीय श्रम अधिवेशन के 7वें सत्र में श्रमिकों के लिये काम के घंटे 14 से घटाकर 8 करने का प्रस्ताव, जो आज भी यथावत हैं।

- श्रमजीवी महिलाओं को प्रसूति के दौरान अवकाश व लाभ स्वीकृत हुये।
- देश में पहली बार नेशनल एम्प्लायमेंट पॉलिसी कार्यान्वित हुई। आज देशभर में कार्यरत रोजगार कार्यालय डॉ. अम्बेडकर की अमूल्य देन।

केवल कठिन एवं लगातार श्रम से ही शक्ति और विश्वास अर्जित किया जा सकता है और अपनी पहचान बनायी जा सकती है - डॉ. अम्बेडकर

- दिनांक 8 नवम्बर 1934 को बाबा साहेब के प्रयास से पेश भारतीय ट्रेड यूनियन एक्ट 1943 के कारण देश में सबसे शक्तिशाली ट्रेड यूनियन मौजूद हैं।
- श्रमजीवियों के लिये हथियार के समान हड़ताल के अधिकार को कानूनी वैधता बाबा साहेब के कारण ही मिली।
- श्रमिकों व कर्मचारियों के जीवन स्तर में वृद्धि हेतु निरंतर वेतन बढ़ोत्तरी, भत्ते बोनस आदि सुविधायें भी डॉ. अम्बेडकर के श्रम मंत्री के कार्यकाल में ही स्वीकृत हुई।

डॉ. अम्बेडकर के जन आंदोलन - डॉ. अम्बेडकर के जीवन के साथ अनेक आंदोलन जुड़े हैं, इनमें खोत पद्धति और महार वतन आर्थिक आंदोलन प्रमुख हैं। खोत पद्धति के खिलाफ डॉ. अम्बेडकर के आंदोलन ने गाँवों में रहने वाले गरीब समुदाय को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाई। जबकि महार वतन जनसंघर्ष ने विशाल ग्रामीण समुदाय को खेत गुलामी के अभिशाप से आजाद कराया। वंचितों को लेकर डॉ. अम्बेडकर की संवेदना उन्हें लोकमान्य तिलक जैसे नेताओं से अलग करती है। तिलक ने वर्ष 1903 में खोत के अधिकारों में कटौती का विरोध किया। हकीकत में खोत के अधिकारों के खिलाफ ब्रिटिश सरकार पहले सक्रिय हुई थी। तिलक ने अपने पत्र 'केसरी' में खोत के समर्थन में अनेक लेख लिखे, तिलक खुद जन्मजात खोत थे, इसलिये वे अपने अधिकारों के लिये लड़े लेकिन उन्होंने यह विचार नहीं किया कि इससे ग्रामीणों का शोषण होता है। तिलक ने स्वराज की माँग की थी जबकि अम्बेडकर सुराज के लिए लड़ते रहे।

जाति व्यवस्था और विभाजन - डॉ. अम्बेडकर का स्पष्ट रूप से मानना था कि जाति व्यवस्था से जुड़े श्रम विभाजन का निर्मूल स्वतः नहीं होने वाला। यह प्राकृतिक कौशल पर आधारित नहीं था। इसमें पसंद, योग्यता, व्यक्तिगत संवेदना का तो कोई स्थान ही नहीं था। भारतीय सामाजिक ढाँचे को बाबा साहेब ने बिना सीढ़ी की बहुमंजिला इमारत बताया जिसमें श्रमिकों का विभाजन एक के ऊपर एक जाति आधारित हुआ है। जाति के कारण ही श्रमिक बँटे

व श्रम भी। उसके अनुसार किसी बच्चे ने जिस समाज में जन्म लिया है, उसे उसी में मरना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि कोई भी श्रमिक ऐसे अनैसर्गिक विभाजन को पसंद नहीं करेगा।

उदारीकरण और अम्बेडकर - देश में पिछले दो दशक से उदारीकरण, वैश्वीकरण पूर्व निजीकरण की नीति अमल में है जो अब सर्वस्वीकृत है। शुरुआत में उदारीकरण का विरोध हुआ लेकिन अब यह दुनिया के साथ भारत में भी फेल चुका है। उदारीकरण की नीति सरकारी नीति व नियमों को सरल बनाने के साथ उद्योगों को एक अनुकूल माहौल प्रदान करती है। डॉ. अम्बेडकर ने चार दशक पहले ही उदारीकरण की नीति की हिमायत की थी। मगर उनकी यह शर्त थी कि यह भारतीय रुपये के अवमूल्यन की कीमत पर न हो। उनका स्पष्ट मानना था कि विनिमय दर ऊँची-नीची हो लेकिन राष्ट्रीय मुद्रा स्थिर रहे। लेकिन उनकी चिंता को समझे बिना विभिन्न सरकारों ने भय के मारे उदारीकरण की नीति को लागू करने में देरी की। साथ ही रुपये का मूल्य भी स्थिर नहीं रख सकी, जिससे भारत को उदारीकरण से जो लाभ होना था, वह नहीं हो सका।

दरअसल बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की नीति के साथ जुड़ा हुआ डॉ. अम्बेडकर का आर्थिक तत्व ज्ञान सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक तत्वों से गुथा हुआ था, जिसका मध्य बिन्दु शोषित व पीड़ित जन थे। उनका आर्थिक तत्वज्ञान समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुता के सिद्धांत के आधार पर था। प्रज्ञा विचार शक्ति, शील चरित्र एवं करुणा दया आधारित जातिहीन लोकतांत्रिक समाज का निर्माण उनके तत्वज्ञान की आत्मा है।

उनका आर्थिक तत्वज्ञान इतना संकुचित भी नहीं था। समग्र देश के लिये क्या सर्वश्रेष्ठ है, उनके मन में हमेशा यही विचार चलता रहता था। ऐसे महान् देशभक्त एवं कुशल अर्थशास्त्री को देश के एक समुदाय मात्र का नेता बताकर हाशिए पर धकेल देना उनके साथ क्रूर अन्याय जैसा है।

साभार - पाँचजन्य

डॉ. अम्बेडकर ने अपनी योग्यता और प्रतिभा से साबित किया कि मनुष्य जन्म से नहीं बल्कि अपने कर्म से महान बनता है।

मेरे नाम की जय-जयकार करने से अच्छा है, मेरे बताए हुए मार्ग पर चलें। - डॉ. अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर ने
जीवन के कई
बिन्दुओं से जुड़े
विभिन्न विषयों
पर देश की
जनता और
सरकारों को कई
रचनात्मक सुझाव
दिये हैं। इनमें
शिक्षा से लेकर
सिंचाई तक
लगभग सभी पक्ष
शामिल हैं।
डॉ. अम्बेडकर के
इन सुझावों की
समीक्षा की
जानी चाहिये।

वे आज भी दिखाते हैं राह

भारत रत्न बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर सही अर्थों में कालजयी युगदृष्टा थे। सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में जो गम्भीर समस्याएँ और बिडम्बनाएँ हमारे सामने हैं, उनके कारगर समाधान बाबा साहेब के चिंतन में मौजूद हैं। खेद है कि उनके चिंतन को कभी व्यापक दृष्टि से नहीं देखा गया। उन्हें भी जातिवाद चश्मे से देखकर उनका अधिमूल्यन अथवा अवमूल्यन किया गया। यदि उनके व्यक्तित्व चिंतन और साधना का राष्ट्रीय सन्दर्भों में मूल्यांकन किया जाता तो हम अपनी बहुत सी गम्भीर समस्याओं का समाधान प्राप्त कर सकते थे। बाबा साहेब समय-समय पर अपने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शिक्षा संबंधी विचारों से समाज और देश का मार्गदर्शन करते रहे। उनके विचारों में जो मौलिकता, प्रगतिशीलता एवं वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि है, वह उन्हें विश्व चिन्तकों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बाबा साहेब की आधारभूत चिंता सामाजिक असमानता थी। उन्होंने अपने समूचे जीवन में मानव मात्र की समानता पर बल दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी व्यक्ति को मात्र जन्म या प्रथा के आधार पर

सामाजिक और आर्थिक न्याय से वंचित नहीं किया जा सकता। वे जाति विभाजन को श्रम विभाजन से पूरी तरह भिन्न मानते थे। लाहौर जात-प्रांत तोड़क मंडल 1936 के वार्षिक अधिवेशन में अपने विचार प्रस्तुत करते हुये उन्होंने कहा, 'जाति प्रथा मात्र श्रमिकों का विभाजन नहीं है, बल्कि यह श्रम के विभाजन से बिल्कुल भिन्न है। यह एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था है जिसमें श्रमिकों का विभाजन एक के ऊपर दूसरे के क्रम में होता है।' जाति प्रथा के भावी दुष्परिणामों से वे भली भाँति अवगत थे। इसी भाषण में उन्होंने इस ओर संकेत करते हुए कहा - जाति प्रथा से आर्थिक उन्नति नहीं होती। जाति प्रथा से नस्ल या प्रजाति में न सुधार हुआ है और न होगा। इससे एक बात अवश्य सिद्ध हुई है कि इससे हिन्दु समाज पूरी तरह छिन्न-भिन्न और हताश हो गया है। आज के दौर में जाति प्रथा जिस भी रूप में मौजूद है उससे सामाजिक समरसता को किस हद तक क्षति पहुँचती है, उसे हम सभी अवगत हैं 31 मई 1936 को मुम्बई में दिये गये अपने अविस्मरणीय भाषण में उन्होंने कहा था - दलित वर्ग की राजनीतिक स्वतंत्रता पर सामाजिक स्वतंत्रता की त्वरित आवश्यकता है। जब तक आपको सामाजिक स्वतंत्रता नहीं मिलती, तब तक आपकी स्वतंत्रता के लिये बनाये गये कानूनी प्रावधानों का कोई उपयोग नहीं है। प्रगति और विकास के सारे दावों और सारे संवैधानिक एवं विधिक प्रावधानों के बावजूद सामाजिक न्याय की दिशा में हम कितना आगे बढ़ सके हैं, यह यक्ष प्रश्न अभी भी हमारे सामने मुँह बाये खड़ा है।

बाबा साहेब का आर्थिक चिंतन न केवल प्रगति है बल्कि पूरी तरह व्यावहारिक है। शैक्षिक दृष्टि से अर्थशास्त्र उनकी विशेषज्ञता का क्षेत्र था। उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से जो पीएचडी और डीएससी की उपाधि प्राप्त की, वे अर्थशास्त्र



विचारों को पढ़ कर बदलाव नहीं आता अपितु विचारों पर चल कर ही बदलाव आता है। - डॉ. अम्बेडकर

में ही थी। अपने सार्वजनिक जीवन में दिये गये उनके भाषणों से उनकी आर्थिक विचारधारा पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। वे 1942 से 1946 तक वाइसराय की एग्जीक्यूटिव काउंसिल में श्रम तथा ऊर्जा विभाग के प्रभारी थे। इस दौरान उन्होंने श्रमिकों से जुड़े मुद्दों के साथ-साथ विद्युत ऊर्जा के विकास, नदियों के विकास आदि पर अपने रचनात्मक विचार प्रस्तुत किये। वे मानते थे कि जलमार्गों के लिये बहुउद्देश्यीय नीतियों का निर्माण आवश्यक है जिसमें जल स्रोतों का बहुआयामी उपयोग हो सके। बाम्बे

लेजिस्लेटिव काउंसिल में 24 फरवरी 1927 की बहस में भाग लेते हुये उन्होंने कहा, 'लोगों की समृद्धि ही राज्य की सबसे बड़ी धरोहर होती है। जो राज्य अपनी जनता को भिखारी बना देता है, अंततः वह खुद भिखारी हो जाता है।' कृषि के क्षेत्र में अलाभकारी जोतों से लिये जाने वाले कर को लेकर उन्होंने अनेक बार चिंता व्यक्त की। इसी बहस में उन्होंने अपना दृष्टिकोण प्रतिपादित करते हुये कहा, हमारा अंतिम उद्देश्य अलाभकारी जोतों पर से कर को खत्म करना है। फिर भी शुरु में हम यह आवश्यक समझते हैं कि बड़ी कृषि आय पर श्रेणीत कर लगाया जाये। वास्तविक खेती करने वालों के हाथ से सम्पत्तिहरण प्रक्रिया के कारण बहुत सी भूमि उन हाथों में पहुँच गई है, जो खेती नहीं करते, भाड़ा खाते हैं। इस प्रकार के विचार उनकी प्रगतिशील आर्थिक दृष्टि का जीता जागता प्रमाण है।

बाबा साहेब की राजनीतिक दृष्टि सामाजिक न्याय की अवधारणा पर आधारित थी। प्रजातंत्र उनकी दृष्टि में आदर्श शासन व्यवस्था है किन्तु वे सामाजिक प्रजातंत्र के पक्षधर थे। यह सामाजिक समानता से प्राण रस ग्रहण करता है। इसलिये वे मानते थे कि संसदीय लोकतंत्र ने आजादी पर बल देते हुये सामाजिक समानता की उपेक्षा की। 22 दिसम्बर 1952 को पुणे में भाषण देते हुये उन्होंने कहा, 'लोकतंत्र की कामयाबी की सबसे पहली शर्त यह है कि समाज में किसी तरह की असमानता नहीं होनी चाहिये। कोई दलित वर्ग न हो और कोई शोषित वर्ग भी न हो। ऐसा कोई न

लोकतंत्र की कामयाबी की सबसे पहली शर्त यह है कि समाज में किसी तरह की असमानता नहीं होनी चाहिये। कोई दलित वर्ग न हो और कोई शोषित वर्ग भी न हो। इस तरह का वर्ग भेद हिंसक क्रांति को जन्म देता है और लोकतंत्र भी उसका उपचार नहीं कर सकता। जो प्रजातंत्र श्रमिकों को अपना दास बना ले, उन्हें संगठन, शक्ति और बुद्धि से वंचित कर दे, वह प्रजातंत्र नहीं बल्कि प्रजातंत्र का उपहार है।

हो जिसके सिर पर सारा बोझ हो। इस तरह का वर्ग भेद हिंसक क्रांति को जन्म देता है और लोकतंत्र भी उसका उपचार नहीं कर सकता।' प्रजातंत्र के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करते हुये उन्होंने 15 सितम्बर 1938 को अपने भाषण में शुद्ध राजनीतिक प्रजातंत्र का खंडन करते हुये कहा, 'ऐसा प्रजातंत्र, जो श्रमिकों को अपना दास बना ले, उन्हें संगठन, शक्ति और बुद्धि से वंचित कर दे, तो मैं कहूँगा कि वह प्रजातंत्र नहीं बल्कि प्रजातंत्र का उपहास है। आज लोकतंत्र के माहौल में हम जिस दिशा में बढ़ रहे हैं, उस पर

बाबा साहेब के राजनीतिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में पुनर्विचार की आवश्यकता है'।

बाबा साहेब विश्व विख्यात अर्थशास्त्री होने के साथ-साथ जाने माने शिक्षाविद् भी थे। उन्होंने अपने शिक्षा संबंधी विचारों में प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा को ध्यान में रखा। बॉम्बे लेजिस्लेटिव काउंसिल में बहस के बीच उन्होंने प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा- प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि प्राथमिक विद्यालय में दाखिल होने वाला बच्चा स्कूल तभी छोड़े जब वह साक्षर हो जाये और अपने शेष जीवन में साक्षर बना रहे। 'शिक्षा के क्षेत्र के व्यवसायीकरण की आलोचना करते हुये इसी बहस में उन्होंने कहा, शिक्षा विभाग ऐसा नहीं जो इस आधार पर चलाया जाये कि जितना वह खर्च करता है, उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाये।' शिक्षा को सभी संभव उपायों से व्यापक रूप में सस्ता बनाया जाना चाहिये। वे छात्रवृत्ति देने की प्रचलित पद्धति को उचित नहीं मानते थे क्योंकि बच्चों के गरीब माता-पिता इसे बच्चों की शिक्षा पर खर्च करने की बजाये परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे इसकी बजाये ऐसे छात्रावास बनाये जाने के पक्ष में थे जिन्हें सरकार या पिछड़ी जातियों को बढ़ावा देने वाली संस्थाएँ चलायें। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने इसी बहस में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये -

1. विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो।
2. विश्वविद्यालय पूर्व तक कक्षाओं का भार सरकार अपने ऊपर

इस दुनिया में महान प्रयासों से प्राप्त की गई चीज को छोड़कर दूसरा कुछ भी बहुमूल्य नहीं है। - डॉ. अम्बेडकर

लें।

3. विद्यार्थी किसी भी कालेज में जाकर किसी भी प्राध्यापक का व्याख्यान सुनने को स्वतंत्र हो।

वे समय-समय पर ऐसे बहुत से रचनात्मक सुझाव देते रहते थे। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन सुझावों की गम्भीर समीक्षा करके इनका उचित क्रियान्वयन किया जाये।

समय आ गया है कि बाबा साहेब के विचार सागर का गहन मंथन कर उनके विचार रत्नों से इस राष्ट्र को समृद्ध किया जाये। उन्हें संकुचित सीमाओं में देखे जाने से हमारे समाज और राष्ट्र की गम्भीर क्षति हुई है। उनके विचार जिस अनुपात में सार्थक और रचनात्मक थे। उसी अनुपात में प्रासंगिक भी। उनके विचार समय बदलने के साथ और भी महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। इसलिये राष्ट्र निर्माण में उनके विचारों के अनुसरण को एक आंदोलन का रूप दिये जाने की आवश्यकता है।

डॉ. अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन की संघर्षगाथा को उन सभी विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखकर समग्रता के साथ देखने की जरूरत है, जिन परिस्थितियों में वे संघर्ष करते रहे। डॉ. अम्बेडकर असमानता के विरुद्ध अपने जीवन को समर्पित कर समाज की समानता के लिये, वंचितों के अधिकार के लिये, अशिक्षा से मुक्ति

के लिये, गरीबों के उत्थान के लिये और सामाजिक समरसता के लिये संघर्षरत भारत को एक मजबूत, संगठित राष्ट्र देखना चाहते थे। उनका मानना था कि जब तक कमजोर समाज, बंटा हुआ समाज रहेगा, तब तक शक्तिशाली राष्ट्र की परिकल्पना करना व्यर्थ है। इसलिये उन्होंने जीवन भर के सामाजिक आंदोलनों में सामाजिक समानता को और राष्ट्रीय एकता को अत्याधिक महत्व दिया। आज देश का दुर्भाग्य है कि दलित समाज डॉ. अम्बेडकर को केवल अपना नेता मानता है और शेष सामाजिक समानता के संघर्ष को कुछ विचारकों, लेखकों ने एकपक्षीय दृष्टिकोण से देखकर उन्हें सम्पूर्ण देश, सम्पूर्ण समाज और हिन्दू समाज से काटकर उनके विराट व्यक्तित्व के साथ न्याय नहीं किया।

आज उनके इसी व्यक्तित्व को समझना होगा। वे सम्पूर्ण मानवता, सम्पूर्ण समाज और सम्पूर्ण देश के महानायक थे। उनके सम्पूर्ण जीवन को समग्रता के रूप में स्वीकार कर उनके मूल विचारों को देश की एकता और समाज की समरसता की प्रासंगिकता के मद्देनजर आज के परिप्रेक्ष्य में समझना अति आवश्यक है।

साभार - पाँचजन्य

कविता.....

मैं अंबेडकर बन जाऊंगा

माँ हाथों में कलम थमा दो।
मैं अंबेडकर बन जाऊंगा।।

धर्म कर्म संसार दिलाऊँ।
समता का अधिकार दिलाऊँ।।
सबको जीने की आजादी।
नहीं किसी की हो बर्बादी।।

माँ मुझको एक कोट सिला दो।
माँ मुझको एक हेट दिला दो।।
टाई पहनकर मैं स्कूल जाऊँगा।
मैं अंबेडकर बन जाऊँगा।।

शोषित पीड़ित दलित वर्ग को
हक अधिकार दिलाऊँगा।
लोकतंत्र का वंदन दूँगा
मैं कानूनी चंदन दूँगा।।
मानवता का वरदान लिखूँगा।
सत्य अहिंसा का ज्ञान लिखूँगा।।
नित नए उपहार मैं दूँगा।
समता का अधिकार मैं दूँगा।।

माँ हाथों में कलम थमा दो।
मैं अंबेडकर बन जाऊँगा।।



संकलन - आरुष मालवीय

पुत्र राकेश कुमार मालवीय
वरिष्ठ अनुवादक, जबलपुर

हम सबसे पहले और अंत में भारतीय हैं। - डॉ. अम्बेडकर

अनुपम राष्ट्रभक्त

अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र, सामाजिक, राजनीतिक शास्त्र तथा धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों का गहन ज्ञान रखने वाले पूज्य बाबा साहेब उच्च कोटि के राष्ट्रभक्त थे।

संविधान निर्माता - संविधान निर्माण में उनका महत्वपूर्ण योगदान था। संविधान सभा के ज्येष्ठ सम्मानीय सदस्य श्री टी.टी. कृष्णामाचारी कहते हैं, “संविधान निर्माण समिति में सात सदस्यों की नियुक्ति हुई। एक सज्जन ने त्यागपत्र दे दिया, उनके स्थान पर दूसरे सदस्य नियुक्त हुये और एक सदस्य का देहांत हो गया। एक सदस्य भर्ती नहीं हुआ और एक सदस्य अमेरिका में थे। एक राज्य के प्रशासन कार्य में लगे थे और दो लोग दिल्ली के बाहर रहते थे तथा अस्वस्थता के कारण बैठकों में नहीं आ सकते थे। इसलिये अंततः सारा काम अम्बेडकर जी को ही करना पड़ा। स्वास्थ्य बहुत ठीक न होने पर भी वे लगन से पूरी शक्ति लगाकर संविधान का काम करते थे। इसलिये हम सब उनको धन्यवाद देते हैं।” वहीं बाबू राजेन्द्र प्रसाद कहते हैं - “राष्ट्रजीवन के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुये तथा जनता के अधिकार और कर्तव्यों को भी ध्यान में रखकर उन्होंने इस महान कार्य को पूरा किया था।”

प्रखर राष्ट्रभक्ति का हृदय - 9 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। 11 दिसम्बर को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के सदस्य चुने गये। 13 दिसम्बर को जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा के उद्देश्यों को सभा के सामने रखा। नेहरू जी के वक्तव्य में तीसरे

परिच्छेद में स्वतंत्र भारत में ब्रिटिश इंडिया के साथ मिलने वाले शेष सभी राज्य संस्थानों के बारे में बोलते हुये कहा -

उक्त शासित प्रदेशों को, चाहे उनकी वर्तमान सीमाओं में अथवा संविधान सभा और उसके बाद में संविधान के कानून के अनुसार निर्धारित सीमाओं में, स्वायत्त इकाई की स्थिति प्राप्त होगी और बनी रहेगी, जिसमें उनकी शेष शक्तियाँ भी होगी और वे सरकार तथा प्रशासन की सभी शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करेंगे, सिवाय ऐसी शक्तियों और कार्यों के, जो संघ में निहित हैं या संघ के लिये निर्धारित हैं, या संघ में चली आ रही हैं या अन्तर्निहित हैं।

सभा में तनाव का वातावरण था। सारे देश को स्वतंत्र भारत में एक राष्ट्र के नाते आगे बढ़ाना है। परन्तु ब्रिटिश इंडिया के भारत में सभी रजवाड़ों को Retain the status of autonomous प्रावधान देने का विरोध था। ऐसे में बाबू राजेन्द्र प्रसाद को अचानक बाबा साहेब से बात करने के लिये बुलाया गया।

बाबा साहेब संविधान सभा के सदस्य होने के नाते, कांग्रेस विरोध के कारण मुम्बई से हार गये थे, इसलिये वे बंगाल से चुनकर आये थे। सभा का गठन और संचालन का सारा काम कांग्रेस के हाथों में था। अन्य रियासतों से भी कांग्रेस का संबंध ठीक नहीं था।

श्री एन.वी. गाडगिल जो प्रत्यक्ष सुन रहे थे, इनके वक्तव्य के बारे में बताते हैं उनका वक्तव्य एक श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त का था। एकात्मबोध का था, भेदभाव लेशमात्र नहीं

इस महान देश का भावी
राजनीतिक, आर्थिक
संरचना के विकास और
उसकी परम उन्नति को
लेकर मेरे मन में जरा भी
संदेह नहीं है। मैं पूर्ण
आश्वासन हूँ कि समय और
परिस्थितियाँ मिलने के
बाद दुनिया में कोई ताकत
देश को एक बनने से नहीं
रोकेगी।



समानता का अर्थ है सभी को समान अवसर प्राप्त हो और सभी की प्रतिभा को समुचित प्रोत्साहन दिया जाये - डॉ. अम्बेडकर

था। प्रखरता थी, शब्द उनके हृदयातरंग से आ रहे थे। इसलिये सभी हर्ष से उनका स्वागत कर रहे थे।

बाबा साहेब ने अपने महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वक्तव्य में कहा - श्रीमान्, इस महान देश की भावी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संरचना के विकास और उनके परम उन्नति को लेकर मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है। मुझे पता है कि आज हम राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से विभाजित हैं। हम झगड़ालुओं के शिविरों का एक झुण्ड है और मैं यह स्वीकार कर किसी हद तक जा सकता हूँ कि मैं शायद ऐसे एक शिविर नेताओं में से हूँ लेकिन इस सब के बावजूद आश्वस्त हूँ समय और परिस्थितियाँ मिलने के बाद दुनिया में कोई ताकत देश को एक बनने से नहीं रोकेगी। हमारी सभी जातियों और आस्थाओं के बावजूद जरा भी संकोच नहीं है कि हम किसी न किसी एकजुट लोगों की तरह होंगे।

बाबा साहेब की विद्वता - वे सदस्यों से पूछते हैं कि परिच्छेद में बनाये अनुसार प्रस्ताव पारित करने का अधिकार सभा को हो सकता है परन्तु देश की समग्रता के लिये यह ठीक है क्या? यह भाषण बाबा साहेब के अन्तःकरण को दर्शाता है। उनके इस भाषण से मातृभूमि के प्रति अत्यंत भक्तिभाव और देश की हजारों वर्षों की परम्परा के प्रति विश्वास और श्रद्धा उजागर होती है।

निष्पक्ष और उदार हृदय - संविधान सभा के काम का सिंहावलोकन करते हुये वे कहते हैं, संविधान की प्रारूप समिति में सब व्यवस्थित चलने का श्रेय कांग्रेस को है। कांग्रेस के अनुशासन के कारण ही प्रारूप समिति, संविधान समिति में प्रत्येक धारा व प्रत्येक संशोधन के भविष्य की विश्वासपूर्ण जानकारी के आधार पर संविधान के मार्गदर्शन का काम कर सकें।

साम्यवादी व समाजवादी संविधान का ज्यादातर विरोध करते थे। साम्यवादी दल को श्रमिक वर्ग की तानाशही पर आधारित संविधान चाहिये था। समाजवादी लोग दो कारणों से विरोध करते थे। पहला कारण यह कि यदि वे अधिकार (सत्ता) में आते हैं तो मुआवजा न देते हुये निजी सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। दूसरा यह कि संविधान में मूलभूत अधिकार निरंकुश व अमर्यादित होने चाहिये। यानि उनका दल सत्ता में नहीं आता है तो उन्हें केवल आलोचना करने की नहीं बल्कि राजसत्ता उलटने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

वे कहते हैं कि राष्ट्र के उपयोग के लिये स्थापित संस्थाओं और उन्हें चलाने के लिये जनता के विश्वास से नियुक्त लोग

प्रमाणित होंगे, ऐसा मानकर चला जाता है, लेकिन आगे आने वाली पीढ़ी को राष्ट्रहित में जो भी संशोधन करने की आवश्यकता होगी, इसके लिये प्रावधान रखा गया है।

केन्द्र और राज्यों के संबंध तथा अधिकारों के बारे में वे बताते हैं-आपातकाल में सत्ता के दावों से संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। कोई संदेह नहीं कि शेष निष्ठा राज्यों पर न होकर केन्द्र पर होनी चाहिये, क्योंकि संयुक्त अधिकार के लिये अंतिम रूप से सम्पूर्ण देश के सामूहिक हित संबंध के लिये काम करने वाला केन्द्र ही होता है। आपातकाल में राज्य सरकार को हटाने का अधिकार केवल केन्द्र को ही होता है। सम्पूर्ण देश की सुरक्षा और अखण्डता तथा एकता के लिये यह आवश्यक है।

ऐतिहासिक दूरदर्शिता - भारत के भविष्य को लेकर उनके मन में बहुत चिंता थी। इस चिंता का कारण उनकी मातृभूमि पर निष्ठा ही थी। संविधान सभा में दिये गये अपने अंतिम भाषण में वे कहते हैं- 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हो जायेगा। (जयघोष) उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा। वह अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करेगा कि उसे पुनः खो देगा? इस संबंध में मेरे मन में पहला विचार यह आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र राष्ट्र नहीं रहा है। मुद्दा यह है कि पहले जो स्वतंत्रता थी, उसे उसने गंवाया। क्या वह उसे फिर से गंवा देगा? कारण वह (उसने) अपनी जनता में से कुछ की अप्रमाणिकता व विश्वासघात के कारण स्वतंत्रता गंवाई थी। मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया तब दाहिर के सेनापति ने कासिम के दलाल से रिश्तत ली और अपने राजा की तरफ से लड़ने से इंकार कर दिया। मोहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने के लिये व पृथ्वीराज से लड़ने का निमंत्रण देने वाला सोलंकी राजा जयचंद था। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिये संघर्ष कर रहे थे, उस समय बाकी मराठा सरदार और राजपूत मुगल बादशाह की तरफ से लड़ रहे थे। जब ब्रिटिशों ने सिख राजकर्ताओं को नष्ट करने का प्रयास किया, तब सेनापति गुलाबसिंह चुप बैठा रहा।

1857 में भारत के बड़े भाग में ब्रिटिशों के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम की घोषणा की गई। ऐसे समय सिख प्रेक्षक बने रहे। क्या इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? यही विचार मुझे व्यग्र करता है। इस व्यग्रता को तीव्र करने वाला कारण यह है कि जाति व संप्रदाय के अपने पुराने शत्रुओं के साथ परस्पर विरोध व विभिन्न राजनीतिक प्रणाली वाले अनेक राजनीतिक दलों का सामना करना पड़ेगा।

एक महान व्यक्ति एक प्रतिष्ठित व्यक्ति से अलग होता है क्योंकि वह समाज का सेवक बनने के लिए तैयार रहता है। - डॉ. अम्बेडकर

भारत के लोग राष्ट्र को अपने राजनीतिक संप्रदाय से श्रेष्ठ मानेंगे अथवा अपने राजनीतिक संप्रदाय को राष्ट्र से श्रेष्ठ मानेंगे ? यदि दलों ने अपनी राजनीतिक प्रणाली को राष्ट्र से श्रेष्ठ माना तो स्वतंत्रता फिर खतरे में पड़ सकती है। इससे अपने देश की रक्षा करनी चाहिये।

समता, स्वतंत्रता, बंधुता के आधार पर लोकतांत्रिक व्यवस्था की रक्षा हो सकती है। इसमें समता और स्वतंत्रता दोनों की रक्षा के लिये बंधुता अत्यंत आधारभूत है। आज बंधुता के आधार पर ही सम्पूर्ण समाज को संगठित किया जा सकता है और स्वतंत्रता की रक्षा की जा सकती है।

लोकशिक्षक बाबा साहेब - उच्च शिक्षा के पहले चरण में इंग्लैण्ड से भारत आने पर बाबा साहेब ने मुम्बई के सिडनहम महाविद्यालय में दो साल अर्थशास्त्र का अध्यापन किया। बाद में एक निजी संस्था में प्रोफेसर ऑफ मर्केन्टाईल के पद पर कार्य किया। सन् 1928 में वे शासकीय विधि महाविद्यालय में प्राध्यापक पद पर नियुक्त हो गये। आगे चलकर इसी महाविद्यालय में सन् 1935 में प्राचार्य पद पर उनकी नियुक्ति हुई। इस पूरी अवधि में उन्होंने एक सव्यसाची, विद्यार्थी प्रिय, प्राध्यापक और अनुशासन प्रिय प्रशासक के रूप में ख्याति प्राप्त की। अध्यापन विषय का गहरा ज्ञान, चौतरफा वाचन और अत्यंत व्यापक जीवनानुभव से उनका अध्यापन प्रभावी और वजनदार था। उनकी अध्यापन शैली में संवाद कुशलता, भाषा की शान और गहरा ज्ञान था। अंग्रेजी भाषा पर उनका अनुठा प्रभुत्व था। उन्हें विद्यार्थियों के विषय, क्रमिक पुस्तक पढ़ाने का जैसे एहसास था, वैसे ही उनका चरित्र निर्माण करना है, साथ-साथ मार्गदर्शन करना है, इसका भी ज्ञान था। महाविद्यालय के प्राचार्य के नाते, मुम्बई विश्वविद्यालय के कामकाज पर उन्होंने अमिट छाप छोड़ी थी।

अध्यापन लौकिक पेशा था और उसके साथ-साथ वे व्यावहारिक कुशलता सिखाने का, लोकशिक्षक का काम भी करते थे। सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं की उन्हें गहरी समझ थी। 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता' आदि नियतकालिकों (पीरियोडिकल्स) से उन्होंने समस्याओं की कठोर चिकित्सा की और उनके बारे में दिग्दर्शन भी किया। बहिष्कृत हितकारिणी सभा, समाज समता संघ आदि संस्थाओं से उन्होंने समाज परिवर्तन को गति दी। दलित और अस्पृश्य समाज की अनेक परिषदों में उन्होंने अपने प्रभावी भाषणों के माध्यम से समाज को मार्गदर्शन किया।

सन् 1927 में महाड में हुई परिषद और चवदार तालाब सत्याग्रह के समय उनके भाषण विशेष रूप से मशहूर हुये। उन्होंने दलित मुक्ति आंदोलन की नींव डाली। मुम्बई, दिल्ली, बीबीसी लंदन और वायस ऑफ अमेरिका आदि रेडियो केन्द्रों से उन्होंने विचार करने को बाध्य करने वाले प्रभावी भाषण दिये। अनेक शासकीय समितियों और मंचों से विचार व्यक्त किये। प्रांतीय और राष्ट्रीय स्तर पर शासकीय यंत्रणाओं में जिम्मेदारी के पद को विभूषित करते हुये कार्य किया और विचार व्यक्त किये, व्यापक अर्थ से लोकशिक्षा ही है। उनमें जो कालनिरपेक्षता और चिरनूतनता है, वह दर्शनीय तो है ही पर सच्चे अर्थों में समाज के मन पर किये गये जादू जैसी है। लोक शिक्षक के रूप में बाबा साहेब का किया हुआ काम चिरस्मरणीय है।

पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके उन्होंने दलित समाज के विद्यार्थियों के लिये मुम्बई और औरंगाबाद में उच्च शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना की। वे महाविद्यालय उपेक्षित समाज के विद्यार्थियों के लिये ज्ञान के मुक्तद्वार थे। संस्था संचालन करते हुये उन्होंने दूरदर्शिता, तत्त्वनिष्ठा और पारदर्शी व्यवहार पर बल दिया। इन संस्थाओं में आर्थिक अनुशासन और सच्चाई पर जो दिया गया। सार्वजनिक पैसे का भलीभांति हिसाब रखकर, उसे समय-समय पर जनता को दिखाना और उसे पवित्र कर्तव्य समझना उनकी संस्था व्यवहार के बारे में संकल्पना थी।

उन्होंने दलित विद्यार्थियों के लिये छात्रावास, उत्तम ग्रंथालय और प्रयोगशाला आदि सुविधाओं की भी व्यवस्था की। शिक्षण संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति करते समय उन्होंने जाति को नहीं बल्कि योग्यता को महत्व दिया। उनका आग्रह था कि मेरे विद्यार्थियों को गुणी अध्यापकों से सर्वोत्तम ज्ञान मिलना चाहिये। बाबा साहेब के समय इन शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत रहे प्राध्यापकों की और प्राचार्यों की नामावाली देखी जाये तो वे कितने उच्च स्तर के नामवर थे, इसका उदाहरण मिलता है। वे समाज को तत्त्वनिष्ठ व्यवहार और उत्कृष्ट विचार देकर रुके नहीं। आदर्श शिक्षा केन्द्र कैसा होना चाहिये, उसका एक आदर्श उन्होंने समाज के सामने रखा।

महाविद्यालय के प्राध्यापकों को संबोधित करते हुये वे कहते हैं, अध्ययन और अध्यापन के काम में प्राध्यापक इतने जुट जाये कि अपने घर की ओर देखने के लिये भी उनको वक्त न मिले। अध्ययन और अध्यापन के साथ अनुसंधान भी आ जाता है। उनका

केवल विद्वान होना ही अपेक्षित नहीं, वे बहुश्रुत भी हों, उनके विषय को रंजक बनने की कला और उत्साह हो। इनमें से कुछ गुण तो आप में होंगे ही, पर कुछ अध्ययन और अनुभवों के द्वारा साध्य करने होंगे।

अध्यापकों को संबोधित करते हुये वे कहते हैं कि प्रत्येक पीढ़ी एक स्वतंत्र राष्ट्र है, ऐसा हम मानें। हर पीढ़ी को बहुमत से स्वयं को बंधित करने का हक है। दूसरे देश पर बंधन लादने का अधिकार जैसे उन्हें नहीं, वैसे ही अपने पीछे आने वाली पीढ़ी पर बंधन डालने का भी हक नहीं है। इन विचारों से बाबा साहेब ने सच्चे लोकतंत्र का सार हमारे सामने रखा है।

पाठशाला और शिक्षा संस्था - डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि पाठशाला एक पवित्र संस्था है। वहाँ छात्रों के मन सुसंस्कृत होते हैं। इसलिये पाठशाला का कारोबार अनुशासन से चलना चाहिये। अन्य जगहों पर अंधाधुंध कारोबार से सार्वजनिक पैसे की हानि होगी, परन्तु शिक्षा के कारोबार में अगर अंधाधुंध गड़बड़ी हो जाये तो नई पीढ़ी का नुकसान होगा। इस भेद और धोखे को कोई भी, कभी भी न भूले। 'बहिष्कृत भारत' के एक लेख में वे कहते हैं 'पाठशाला उत्तम नागरिक बनने का कारखाना है। अर्थात् इसे कारखाने में फोरमैन जितना कुशल होगा उतना अच्छा माल कारखाने में तैयार होगा।' अध्यापकों और संस्था चालकों के लिये कारोबार का बाबा साहेब का दिशादर्शन है यह।

बाबा साहेब ने शिक्षा क्षेत्र की आदर्श संस्था का श्रीगणेश पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना करके किया। शिक्षा संस्था के संचालन की जो नियमावली बाबा साहेब ने तैयार की, उससे शिक्षा संस्था के आदर्श कारोबार और व्यवहार के बारे में उनका दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। वे शिक्षा संस्थाओं में अध्यापक-प्राध्यापकों की नियुक्ति करते समय जाति-पाँति का नहीं, उच्च योग्यता का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि मेरी शिक्षा संस्थाओं में पिछड़े वर्ग के छात्रों के प्रवेश को सर्वाधिक प्रधानता है, परन्तु उन्हें पढ़ाने वाला अध्यापक वर्ग केवल उच्च योग्यता वाला ही हो, भले ही वह किसी भी जाति का क्यों न हो। उनका मानना था कि राजनीतिक दलों को भी शिक्षा कार्य करना चाहिये और उसके लिये शिक्षा संस्थाओं का जाल तैयार करना चाहिये। इसी वजह से उन्होंने शे.का. फेडरेशन के घोषणा पत्र में इस विषय को स्पष्ट करने वाली धारा को समाविष्ट किया।

बाबा साहेब सहशिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने कहा है कि

स्त्रियों को पुरुषों की बराबरी में एक साथ शिक्षा प्राप्त हो। वे कहते हैं कि स्त्रियों के साथ रहकर भी जो पुरुष अपना मन काबू में रखते हैं और पुरुषों के संग रहकर भी जो स्त्रियाँ अपना पाँव न फिसले, इसके बारे में सजग रहती हैं, उन्हें नीतिमान कहना चाहिये। बाबा साहेब का स्पष्ट मत था कि संस्था चालकों को सहशिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहिये।

छात्रों का दायित्व - बाबा साहेब स्वयं अनेक वर्षों तक प्राध्यापक रहे थे, अतः छात्रगण से उनका गाढ़ा परिचय था। शिक्षा से छात्रों का आत्मविश्वास जागना चाहिये, इस विचार को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं - आत्मविश्वास जैसी दूसरी कोई दैवी शक्ति नहीं, हमें अपना आत्मविश्वास कभी गंवाना नहीं चाहिये। बाबा साहेब मूल्य शिक्षा पर बल देते हुये कहते थे कि विद्या, विनय, शील और कड़ा अनुशासन सब कुछ छात्रों को आत्मसात करना चाहिये। विद्या के साथ शील चाहिये, क्योंकि शील के बिना विद्या व्यर्थ है। वे कहते थे कि शिक्षा से छात्रों की सामाजिक संवेदनायें भी सजग होना चाहिये। छात्रों को राजनीति में दखलंदाजी नहीं करनी चाहिये अगर वे अध्ययन छोड़कर राजनीति को अपनाने लगेंगे, तो जीवन भर उनकी हानि होगी।

उपाधि की सीमायें स्पष्ट करते हुये बाबा साहेब कहते हैं कि केवल उपाधि धारण करके कुछ भी साध्य नहीं होगा, क्योंकि विश्वविद्यालयों की उपाधियों और बुद्धिमत्ता में अन्योन्य संबंध होता हो, ऐसा नहीं है। परीक्षा में सफल होना और उपाधि पाना अलग है और सुशिक्षित और ज्ञानी होना अलग है। अर्थात् उनकी छात्रों से यह अपेक्षा थी कि छात्रों का भारवेत्ता होने से ज्ञानवेत्ता होना ज्यादा जरूरी है।

छात्रों की कमियों को सही ढंग से जानते हुये बाबा साहेब कहते हैं कि विषय की जड़ तक पहुँचकर सम्यक् ज्ञान का मार्मिक आकलन करके उसकी भलीभाँति रचना करने की योग्यता सर्वसाधारण ज्ञान की बुनियादी अवस्था, सुक्तिवाद, निर्दोष मत प्रदर्शन, प्रश्नों की कसौटी पर उत्तर खोजना, मन के विचारों को सुस्पष्टता से रखना आदि छात्रों में आजकल कम मात्रा में दिखाई देती है।

सिद्धार्थ महाविद्यालय के छात्रों को संबोधित करते हुये बाबा साहेब कहते हैं 'शिक्षा से आपके मन, दृष्टि, विचार शक्ति, समस्या सुलझाने की ताकत आदि का विकास होना चाहिये। आज हमारा देश जिन समस्याओं से जूझ रहा है, उन समस्याओं के बारे में इस

शक्ति के माध्यम से अपना अभिमत बनाने में उस शक्ति का, दृष्टि का पूर्ण उपयोग करना चाहिये। इतना ही नहीं, राजनीतिज्ञों को इन समस्याओं को सुलझाने में आपके इस ज्ञान का उपयोग करना चाहिये। आपकी सहकारिता से वे उत्तर खोजे जाने चाहिये। अगर वे कहीं गलती कर रहे हैं तो निडरता से, स्पष्टता से उन्हें बताने का साहस शिक्षा से प्राप्त होना चाहिये।' इतनी बड़ी अपेक्षा वे छात्रों से रखते थे।

अध्यापकों की योग्यता - स्वयं एक उत्कृष्ट अध्यापक रहे बाबा साहेब की अध्यापक वर्ग से क्या अपेक्षाएँ थी। उनका कहना था कि शिक्षा एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है और अध्यापक उसका मुख्य आधार है। इसलिये शिक्षा और योग्यता उनकी ज्ञान पिपासा, विद्या व्यासंग, आत्मीयता और ध्येयसक्त जीवनदृष्टि इन बातों पर निर्भर है। बाबा साहेब ने अपनी ज्ञान साधना में वाचन-मनन, चिंतन और अध्ययन के त्रिसूत्र को अपनाया था। इसी वजह से वे स्वयं एक उत्कृष्ट अध्यापक और व्यापक अर्थ में समाज शिक्षक बन पाये। इस संदर्भ में उनकी भूमिका पहले करनी बाद में कथनी थी। अध्यापक को बहुश्रुत होना आवश्यक है। उसे अपने विचारों का विन्यास अच्छी तरह करना जरूरी है, अपने और दूसरों के विचार जाँचने जरूरी है, तभी वे छात्रों को अध्ययन करने तथा विचार करने के लिये प्रवृत्त कर सकेंगे। वह तेज बुद्धि का और चयनशील वृत्ति का हो। उसमें चिकित्सावृत्ति तथा मर्मज्ञता हो। उनकी दृष्टि में अध्यापक वर्ग राष्ट्र का सारथी है, क्योंकि उनके हाथों में शिक्षा की बागडोर होती है। अतः पाठशालाओं में सम्बुद्धि वाले, उदात्त विचारों से भरपूर और विशाल हृदय के अध्यापक होना जरूरी है।

शिक्षा नीति - डॉ. अम्बेडकर ने अपनी शिक्षा विषयक नीति क्रमबद्ध रूप से ग्रंथित नहीं की। इस संदर्भ में उनके रखे विचार अन्य स्थानों पर अलग-अलग माध्यमों द्वारा व्यक्त हुये हैं। उनकी संपादित पत्रिकाएँ, स्थापित की हुई सामाजिक और शिक्षा संस्थाओं के ध्येय और नीतियों से उनके विचारों का पता चलता है। उनके अन्यान्य शासकीय समितियों, आयोगों के सामने दिये गये साक्ष्य, प्रस्तुत किये गये प्रश्न प्रपत्र इनके माध्यम से भी शिक्षा नीति का चिंतन सामने आता है। विविध परिषदों में, सम्मेलनों में, महाविद्यालयों तथा शिक्षण संस्थाओं में दिये भाषणों के द्वारा भी उनके विचार प्रस्तुत हुये हैं। वैधानिक क्षेत्र अर्थात् बम्बई विद्यापीठ सीनेट, शिक्षण संस्थाओं में उनके भाषणों में भी विचार प्रस्तुत हुये।

बम्बई विधि मंडल, महाराज्यपाल की मंत्रिपरिषद, संविधान सभा, लोकसभा आदि में हुई चर्चाओं में उन्होंने शिक्षा नीति के अनेक मुद्दों पर विशद विचार व्यक्त किये हैं। उनके विस्तृत चिंतन में शिक्षा क्षेत्र की सामाजिक विषमताएँ, उस पर उपाय, साक्षरता प्रसार और विकास की आवश्यकता, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और संशोधन, व्यवसाय प्रशिक्षण, तंत्र शिक्षा जैसे विषय विविध स्तरों के संदर्भ में दिखाई देते हैं। उनके व्यापक चिंतन में से कुछ विशेष मुद्दों पर विचार इस प्रकार हैं -

एकसूत्रीय राष्ट्रीय नीति - केन्द्रीय सत्ता की परिकल्पित एकसूत्रीय राष्ट्रीय नीति से ही सार्वजनिक शिक्षा की समस्या- यह खण्ड-खण्ड करके सुलझने वाला प्रश्न नहीं है, बल्कि यह प्रश्न एकसूत्रीय नीति से ही सुलझ सकता है, क्योंकि शिक्षा निरंतर चलने वाली प्रदीर्घ प्रक्रिया है। शिक्षा क्षेत्र को सच्चे अर्थों में स्वतंत्र होना चाहिये, उस व्यक्ति की सत्ता धोखादायक है। शिक्षा की जिम्मेदारी स्थानिक स्वराज्य संस्थाओं को न सौंपे। वे कहते हैं, शिक्षा गटर साफ करने जैसी बातों से भिन्न हैं, यहाँ कारोबार उपयुक्त नहीं।

शिक्षा अन्न के समान - साक्षरता प्रसार और विकास तथा सार्वजनिक शिक्षा के उद्देश्य पर बल देते हुये बाबा साहेब कहते हैं कि एक बार बच्चे ने प्राथमिक शाला में प्रवेश ले लिया, तो वह साक्षर हो गया, ऐसा नहीं है। जब तक उसमें जीवन भर साक्षर रहने की क्षमता विकसित नहीं होती, तब तक वह प्राथमिक शाला या साक्षरता वर्ग न छोड़े। उनकी दृष्टि में शिक्षा अन्न के समान है, उसकी आवश्यकता जीवन भर होती है। उनका दृढ़ मत था कि इस संदर्भ में पूरी जिम्मेदारी शासन को ही उठानी होगी।

सामाजिक विषमता - शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त सामाजिक विषमता के बारे में बाबा साहेब का मत अत्यंत स्पष्ट है। सन् 1927 में बम्बई विधि मण्डल में दिये भाषण में उन्होंने इस संदर्भ में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा स्तर पर जो विषमता है, उसकी सांख्यिकी प्रस्तुत की। उस पर आधारित निष्कर्ष थे समूचे हिन्दू समाज में निरक्षरता का परिमाण 82.5 प्रतिशत है, उसमें भी पिछड़े समाज में वह 98 प्रतिशत जैसा भयंकर है। माध्यमिक और उच्च शिक्षा के स्तर पर पिछड़े वर्ग की अवस्था अत्यंत दयनीय है। शैक्षिक विषमता की जड़ सही मायने में सामाजिक और आर्थिक विषमता में है।

उपाय - इन परिस्थितियों के उपाय बताते हुये वे कहते हैं कि असमान बर्ताव तत्व को स्वीकार करके कुछ वर्गों को विशेष

सहूलियतें देने की आवश्यकता है। जो निम्नस्तरीय हैं, उन्हें विशेष दर्जा और सहूलियत देने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। वे कहते हैं, केवल छात्रवृत्ति देने से पिछड़े वर्ग की समस्या नहीं सुलझ पायेगी। छात्रावास, अभ्यासगृह, बालवाड़ी, संस्कार केन्द्र आदि से उनके लिये उचित, प्रेरणादायी सामाजिक वायुमण्डल का निर्माण करना आवश्यक है। आगे चलकर भारतीय संविधान में शामिल हुये आरक्षण नीति के बीज उनके इस भाषण में मिलते हैं।

समाज परिवर्तन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा से समाज परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। बाबा साहेब कहते हैं कि परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गति देने के लिये समाज मानस में परिवर्तनवादी विचार दृढ़ होना आवश्यक है। व्यापक एवं सार्वत्रिक शिक्षा द्वारा ये विचार समाज में दृढ़ बन सकते हैं। शिक्षा का सामाजिक आशय कभी भी आँखों में ओझल नहीं होना चाहिये।

शिक्षा की संकल्पना के अंतर्गत - पढ़ो और पढ़ाओ की प्रक्रिया अभिप्रेरित होती है। उसी से समाज की प्रगति सम्भव होती है। बाबा साहेब कहते हैं कि शिक्षा के बिना किसी भी समाज में संवेदनशीलता, प्रतीति या सजगता निर्मित नहीं होगी तथा बिना जागृति के समाज की उन्नति भी नहीं होती। शिक्षा का आशय खासकर ऐहिक होना चाहिये। उनकी व्यावहारिक अपेक्षा थी कि समाज में जो विषमतायें हैं, वे शिक्षा के माध्यम से दूर हों। वे एक आदर्शवादी विचार सामने रखते हैं कि शिक्षा किसी के व्यक्तित्व में निहित सुप्त शक्तियों को मुक्त करती है और मनुष्य को पशुता से मनुष्यत्व की ओर ले जाती है। बाबा साहेब यह कहने से भी नहीं चूकते थे कि शिक्षा का हेतु व्यक्ति का समाजीकरण और नैतिकीकरण करना है क्योंकि सभ्यता और संस्कृति की बुनियाद शिक्षा ही है।

बाबा साहेब की ज्ञान की संकल्पना बड़ी ही व्यापक और आदर्श है। वे कहते हैं कि विद्या, प्रज्ञा, करुणा, शील और मित्रता इन पंचतत्त्वों के अनुसार हर एक को अपना चरित्रनिर्माण करना चाहिये। वे कहते हैं कि विद्या के साथ शील भी चाहिये, शील के बिना विद्या व्यर्थ है। विद्या तलवार के समान है, इसलिये जो उसे

धारण करे, उस पर उसकी महत्ता अवलंबित है। बुद्धि और चतुराई को सदाचार अर्थात् शील का साथ मिलना चाहिये। बगैर शील के अगर शिक्षित लोग निर्मित होने लगेंगे, तो उनकी शिक्षा से राष्ट्र और समाज का नाश होगा। मनुष्य का निर्माण करें वह शिक्षा। ज्ञान और प्रज्ञा का सुचारू मेल माने शिक्षा। व्यक्ति को स्वत्व की प्रतीति कराना शिक्षा का कार्य है।

ज्ञान का अर्थ प्रकाश। गौतम बुद्ध की दी हुई शिक्षा की यह परिभाषा बाबा साहेब को भाती है। यह प्रकाश सामाजिक, आर्थिक, राजकीय क्रांति का आधार बनना चाहिये। प्रकाश शब्द का विश्लेषण वे इस प्रकार करते हैं - शिक्षा का संदर्भ सामाजिक होना चाहिये, शिक्षा शोषणमुक्ति का महामार्ग है, अतः समाज में जो पीड़ित, उपेक्षित, शोषित घटक हैं उनकी दैन्यावस्था मिटाने वाला

अचूक उपाय है शिक्षा। उनकी दृष्टि में समाज में जो पददलित हैं, उनकी आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का आंदोलन है शिक्षा। वे समाज के निम्नस्तर को उच्चस्तर तक उठाने के लिये शिक्षा और शिक्षा में आरक्षण के दोहरे उपायों के कठोर क्रियान्वयन मानते हैं। समताधिष्ठित, मूल्याधिष्ठित और नीतिमान समाज-यह सफल लोकतंत्र की पूर्वशर्त है और यह संस्कार केवल शिक्षा के माध्यम से ही हम पा सकते हैं। उनका यह प्रतिपादन चिंतनीय है।

समाज में निरक्षरता के परिणाम के बारे में चिंता व्यक्त करते हुये बाबा साहेब कहते हैं कि इसी निरक्षरता ने जनता को मानसिक दृष्टि से गुलाम, आर्थिक दृष्टि से दरिद्र, सांस्कृतिक दृष्टि से लूला-लंगड़ा और सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा बना दिया। इसी वजह से समाज विदेशी आक्रमकों के विरुद्ध संघर्ष करने की ताकत खो बैठा है। उनके इस अभिप्राय का भावार्थ समझने की आवश्यकता है। बाबा साहेब ने शिक्षा और शिक्षा शास्त्र की केवल तात्विक चर्चा नहीं की है। उनका शिक्षा संबंधी ध्येय यह है कि औपचारिक शिक्षा को नैतिकता का साथ मिलना चाहिये।

बम्बई विश्वविद्यालय से बी.ए. की उपाधि पाने के बाद सन् 1913 में वे उच्च शिक्षा हेतु अमेरिका गये। कोलंबिया



विश्वविद्यालय से एम.ए. और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। अनेक चर्चा सत्रों में उन्होंने शोध निबंध भी प्रस्तुत किये। बाद में इंग्लैण्ड जाने के बाद उन्होंने लंदन विश्वविद्यालय, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स तथा ग्रेज इन नामक विश्वमान्य संस्थाओं में अध्ययन किया। वहाँ उन्होंने एम.एस.सी., डी.एस.सी., एल.एल.डी., बार एट लॉ ये उपाधियाँ सम्मान सहित प्राप्त की। सन् 1952 में कोलंबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉलिट की उपाधि सम्मान के साथ प्रदान की। हर उपाधि के लिये उन्होंने ज्ञान साधना कर स्वतंत्र संशोधन ग्रंथ लिखे और वे ग्रंथ विश्वविख्यात हुये। इनमें प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक और वित्तीय विषयों के ग्रंथों का समावेश है। विदेश से वापस आने पर देश के सामने जो अनेक समस्याएँ थीं, उन पर अध्ययन करके उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे। उनका अध्ययन और लेखन निर्बाध गति से सदा चलता रहा। सड़सठ साल की उम्र में उनकी जीवनयात्रा समाप्त हुई। उससे कुछ दिन पूर्व उन्होंने 'बुद्ध और धम्म' नामक महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखकर पूरा किया था। उनका समग्र साहित्य 22 खण्डों में 15,000 पृष्ठों में ग्रंथित हुआ है। बाबा साहेब के इस योगदान का परमर्श लेना एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय है।

बाबा साहेब ने वैचारिक विश्व में जो परिवर्तन किया, उसका प्रमुख आधार रहा उनका अखण्ड ग्रंथ पठन। वे विदेशी विश्वविद्यालयों के ग्रंथालयों में प्याला भर दूध और ब्रेड के दो-चार टुकड़े खाकर 18-18 घंटे अध्ययन करने वाले विद्यार्थी थे। पेट काटकर उन्होंने 35,000 ग्रंथ खरीदे और तो और हर ग्रंथ बारीकी से पढ़ा हुआ और हाशिये में टिप्पणी किया हुआ था। ग्रंथ तो मानो उनके प्राण ही थे। पं. मदनमोहन मालवीय जी ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये इन ग्रंथों की माँग की थी। वे उन ग्रंथों के लिये मुँह माँगा दाम देने के लिये तैयार थे। उसे बड़ी नम्रता से अस्वीकार करते हुये बाबा साहेब ने कहा, आप तो मानो मेरे प्राण ही माँग रहे हैं।

शिक्षा विषयक चिंतन - शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष



करो। बाबा साहेब ने प्रगति का यह मूलमंत्र समाज को दिया। इस मूल मंत्र में शिक्षा का प्रथम स्थान है परन्तु उनका शिक्षा विषयक चिंतन, सुसंगठित रूप में प्रबंध रूप में उपलब्ध नहीं बल्कि अन्यान्य रचनाओं में बिखरा पड़ा है। सम्मेलनों और परिषदों में किये हुये भाषण, पत्रवांगमय पत्रिकाओं में छपे लेख, शिक्षा संस्थाओं को दी भेंट, प्रांतिक या केन्द्रीय विधिमण्डलों में तथा विश्वविद्यालयों में किये भाषण, अन्यान्य वर्गों के सामने दिये हुये साक्ष्य आदि में ये विचार व्यक्ति हुये हैं। अपने समग्र चिंतन में शिक्षा का तत्वज्ञान, ध्येयवाद, शिक्षा का सामाजिक आशय, पाठ्यक्रम के स्वरूप

और ध्येय, विद्यार्थियों को दायित्व, अध्यापकों की पात्रता, पाठशाला तथा महाविद्यालयों की जिम्मेदारी, शिक्षा क्षेत्र में रखे हुये आरक्षण और उनकी मीमांसा जैसे शिक्षा विषयक अलग अलग पहलुओं पर उन्होंने भाष्य किया है। प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालयों का कारोबार, साक्षरता प्रसार, सार्वत्रिक शिक्षा की अनिवार्यता आदि बातों की भी उन्होंने चर्चा की है। उन्होंने सैद्धांतिक रचना के साथ व्यावहारिकता को भी महत्व दिया। हम अब उनकी इसी विचारसंपन्नता का संक्षिप्त लेखा-जोखा लेंगे।

बाबा साहेब का मत था कि शिक्षा और समाज का एक अटूट रिश्ता ही है क्योंकि शिक्षा ही समाज के सांस्कृतिक उन्नयन का आधार होती है। कहते हैं कि समाज द्वारा अपना स्तर अधिक से अधिक ऊँचा उठाने के लिये सामूहिक पद्धति से किया प्रयास शिक्षा होता है। समताधिर्मित, समाज निर्मित के लिये शिक्षा जैसा दूसरा कोई साधन नहीं है। समता के सिवाय स्वतंत्रता माने परतंत्रता को आमंत्रण। अपना यह मुद्दा स्पष्ट करते हुये बाबा साहेब कहते हैं कि सामाजिक समानता और स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिये आवश्यक होने वाली शक्ति शिक्षा है। वे यह भी कहते हैं कि व्यक्ति की स्वतंत्रता अबाधित रखने और उसकी रक्षा के लिये काम आने वाली ताकत शिक्षा ही हो सकती है। इससे उनका शिक्षा विषयक विस्तृत दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

साभार - पाँचजन्य

मैं ऐसे धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता और भाई-चार सिखाये। - डॉ. अम्बेडकर

एक नाम, हजार आयाम

डॉ. अम्बेडकर का जीवन बड़ा व्यापक, विस्तृत और बहुआयामी था। लेकिन देश का दुर्भाग्य है कि उनका समग्रता में अध्ययन और विश्लेषण बहुत दुर्लभ दिखता है। सभी लोगों ने उनका कोई न कोई एक ही पक्ष देखा और उसी को लेकर अपना मन बनाना प्रारम्भ किया। डॉ. अम्बेडकर जी के बारे में हमें अनेक प्रकार के मत देखने और सुनने को मिलते हैं।

बहुत से लोग कहते हैं कि वे हमारे लिये भगवान थे और साक्षात् ईश्वर के रूप में आये थे, हमारी स्थिति को सुधारने के लिये जो प्रयत्न उन्होंने किये वे किसी भगवान से कम नहीं हैं। इसलिये कुछ लोग उनको साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो उन्हें झूठा ईश्वर कहते हैं और उनकी बातों को नकार देते हैं। कुछ कहते हैं कि वे केवल अनुसूचित वर्ग के थे, वहीं कुछ लोग कहते हैं कि वे समग्र समाज के लिये थे, कुछ लोगों का मानना है कि महात्मा गाँधी और कांग्रेस से उनका भारी मतभेद था, लेकिन कुछ लोगों का मानना है कि गाँधी जी और अम्बेडकर जी दोनों का उद्देश्य एक ही था। मार्क्सवादी विचारधारा के लोग मानते हैं कि वे वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते थे, लेकिन अम्बेडकर जी ने स्पष्ट लिखा है कि 'मैं कम्युनिज्म और कम्युनिस्टों का शत्रु नम्बर एक हूँ'।

कुछ कहते हैं कि वे धर्म के विरोधी थे, डॉ. अम्बेडकर ने स्वयं कहा है कि 'मैं धर्म पर विश्वास रखता हूँ। धर्म के मूल्यों के बिना समाज का संघर्ष केवल ईर्ष्यालु तथा सत्ता प्राप्त करने वाले लोगों का एक क्षूद्र संघर्ष बन जायेगा'। धर्म पर उनका बड़ा व्यापक विश्वास था।

कुछ लोगों का मानना था कि वे सवर्णों और ब्राह्मणों के विरोधी थे, लेकिन उनके जीवन में एक बार भी ऐसा मत नहीं आया कि उन्होंने किसी भी एक वर्ग विशेष को कुछ खराब बोला हो। वे कुछ व्यवस्थाओं को लेकर संघर्ष कर रहे थे। उनका संघर्ष कुछ मान्यताओं से था। उनका संघर्ष उच्च जाति के लोगों से नहीं था। इसलिये उनके इस सारे संघर्ष में सभी जातियों और वर्गों के लोग शामिल थे।

यह बात सच है कि जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने बौद्ध मत अपनाया था। उन्होंने सभी धार्मिक मान्यताओं के बारे में बहुत

विस्तार से लिखा है। परन्तु इन विषयों और विचारों का समग्रता में विश्लेषण और अध्ययन नहीं हुआ है।

उनका जीवन विशाल एवं विराट है। चिंतन, अध्ययन और लेखन शोधपरक है, उनका संघर्ष अतुलनीय है, उसके आयाम भी बहुत हैं, विस्तृत हैं। मैं कुछ बिन्दुओं की व्याख्या आपके सामने संक्षेप में रखने का प्रयास करता हूँ।

महार नाम की तथाकथित अस्पृश्य जाति में जन्म लेने वाला एक बालक जिसका नाम भीमराव था, उनके पिता का नाम रामजी सकपाल था, वे सेना में सूबेदार थे। 14 भाई-बहनों में सबसे छोटे भीमराव का जीवन कष्ट एवं संघर्षयुक्त रहा परन्तु वे मैट्रिक करने वाले महार जाति के पहले छात्र बने। उनकी इस सफलता में उनके एक ब्राह्मण अध्यापक का, जिनका सरनेम (उपनाम) अम्बेडकर था, बहुत रचनात्मक सहयोग प्राप्त हुआ।

उनके एक और अध्यापक कृष्णा जी केलुस्कर ने भीमराव को भगवान गौतम बुद्ध की एक छोटी सी जीवनी पढ़ने को दी। भीमराव बताते हैं कि मैं जीवन भर केलुस्कर जी को और भगवान बुद्ध को भूल नहीं सका। केलुस्कर ही भीमराव को बड़ौदा के राजा साहेब के पास ले गये और उनको पच्चीस रुपये की छात्रवृत्ति मिलने लगी। बम्बई युनिवर्सिटी से उन्होंने अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान लेकर 1912 में बी.ए. किया। बड़ौदा महाराज ने छात्रवृत्ति बढ़ाकर 75 रुपये कर दी। उन्होंने थोड़े दिनों के लिये बड़ौदा राज्य में नौकरी की। वहाँ भी भेदभाव का वातावरण था, तो भीमराव



जीवन लंबा होने के बजाए, महान होना चाहिए। — डॉ. अम्बेडकर

नौकरी छोड़कर वापस आ गये।

केलुस्कर जी के प्रयास से साढ़े 92 पाउण्ड प्रति माह की छात्रवृत्ति पक्की हुई और भीमराव उच्च अध्ययन के लिये कोलंबिया चले गये। वहाँ उन्होंने एम.ए. और पी.एच.डी. की डिग्री हासिल की। वे कोलंबिया में तो पढ़ते ही थे, साथ ही साथ समय निकालकर लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में भी पढ़ते थे। दोनों स्थानों पर पढ़ते हुये वे डिग्री प्राप्त कर रहे थे। एक जगह से वे एम.ए. और पी.एच.डी. करते हैं, तो दूसरी जगह से एम.एस.सी. और डी.एस.सी. करते हैं। यह कोई आसान काम नहीं था। उन्होंने ये चारों डिग्रीयाँ प्राप्त की। इसके साथ ही वे विदेश में ही बार एट लॉ भी पूर्ण किया।

पढ़ाई पूरी करने के बाद वे सामाजिक जीवन में आये उनके मन में समाज का काम करने का भाव था। वे एक अच्छे समाज सुधारक हैं, अच्छे श्रमिक नेता हैं, एक बैरिस्टर हैं, कुशल राजनीतिक नेता भी हैं। वे कई पत्रों के सम्पादक भी हैं, वे कुशल वक्ता हैं, वे अच्छे अर्थशास्त्री हैं, अच्छे एंथ्रोपोलॉजिस्ट (नृ-विज्ञानी) हैं, सामाजिक विषयों पर कई सिद्धांत देने वाले हैं, अनेक देशों के संविधानों के वे ज्ञाता हैं तथा भारतीय संविधान के निर्माता भी हैं। वे क्या नहीं हैं? ध्यान में आयेगा कि उनके जीवन के अनेक आयाम हैं।

जीवन संघर्ष मय था लेकिन कोई शत्रु नहीं था। वे संघर्ष करते हैं, लेकिन किसी को शत्रु नहीं मानते। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि बैर से बैर समाप्त नहीं होता, शत्रुता से शत्रुता नहीं जाती इसलिये बैर करते हुये समता और ममता लाना सम्भव नहीं है। किसी से भी बैर किये बिना, यह व्यक्तित्व आगे बढ़ता है।

यह सच है कि उनके जीवन के बहुत थोड़े से प्रसंग ही लोगों के सामने आये हैं। सारे जीवन के प्रसंग और आयाम, उनकी विलक्षण क्षमतायें लोगों के सामने नहीं आई हैं। यहाँ पुरुषों के साथ ऐसा ही होता है। डॉ. जॉनसन लिखते हैं कि व्यक्ति के अंदर बहुत सारी क्षमतायें होती हैं लेकिन नियति उसकी किसी एक क्षमता को चुन लेती है और उसी को लेकर आगे बढ़ती है।

हम जानते हैं कि लोकमान्य तिलक गणित के बड़े अच्छे विद्यार्थी थे, लेकिन गणित के काम में उनको आगे बढ़ने का समय नहीं मिला। अटल बिहारी वाजपेयी बड़े अच्छे कवि रहे, लेकिन उन्हें कविता और लेख लिखने का समय नहीं मिला। स्वामी

रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद गणित और विज्ञान के अच्छे विद्यार्थी थे, लेकिन दोनों के जीवन में शायद सन्यास ही लिखा था।

नियति कहाँ से कहाँ ले जाती है। अम्बेडकर जी का जीवन भी ऐसा ही है। इसलिये हमें यह कोशिश करनी चाहिये कि हम उनके जीवन का समग्रता से अध्ययन कर सकें, समग्रता से विचार कर सकें, तभी किसी व्यक्ति का उचित मूल्यांकन हो सकता है।

अतः समझौते के अनुसार शिक्षा प्राप्त कर वे बड़ौदा आ गये। वे संक्रेटरी ऑफ बड़ौदा स्टेट बन गये। यहाँ भी वातावरण अच्छा नहीं था। उनका जो क्लर्क था, वह भी उनको फाइल फेंककर देता था। अपना पानी अपने साथ लाना पड़ता था। क्लब में उनके साथ कोई खेलता नहीं था। उनकी कुर्सी अलग थी, उनको कोई भी मकान भाड़े पर नहीं मिला और अंत में एक झूठा नाम रखकर पारसी धर्मशाला में उन्होंने कमरा भाड़े पर लिया, नाम रखा अदालतजी सोराबजी।

डॉ. अम्बेडकर वर्णन करते हैं - 'एक दिन बड़ी संख्या में पारसी लोग लाठी डंडे लेकर मेरे पास आ गये और कहा तुरन्त निकल जाइये यहाँ से।' अम्बेडकर जी बोलते हैं कि सारा सामान लेकर मैं बाहर सड़क पर पेड़ के नीचे था। सारी डिग्री पास में होने के बाद भी उनका कोई अर्थ नहीं है। मैं कहाँ जाऊँ? कोई मित्र भी अपने यहाँ रखने को तैयार नहीं। अपमानजनक व्यवहार के कारण उनके मन में एक टीस उठी। सारी डिग्री किस काम की है, समाज में सम्मान तो मिलता नहीं है। आँखों से आँसू बहने लगे और शायद उसी दिन उनके जीवन में एक संकल्प गहरा बैठ गया और उन्होंने निर्णय लिया कि यह जीवन इस समाज के परिवर्तन के लिये लगा दूँगा। वह इस पर अंतिम साँस तक दृढ़ रहे।

जो बच्चा मिट्टी के छोटे से लेम्प में रात-रात भर पढ़ता था, बिना भोजन के दो-चार ब्रेड के पीस लेकर कोलंबिया और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में पढ़कर आ गया, वह कितना भी धन कम सकता था लेकिन नहीं, उसने सारा जीवन समाज परिवर्तन के लिये समर्पित कर दिया था। इस समाज के वर्तमान दुख और दैन्य को समाज की सारी विभेदक परम्पराओं और मान्यताओं को बदलने के लिये वे समर्पित हो गये।

उनका सारा जीवन तीन आदर्शों के पीछे चलता है। पहले गुरु उनके महात्मा बुद्ध हैं। बुद्ध ने विद्रोह किया, उस समय की परम्पराओं और मान्यताओं से, रूढ़ियों से, पाखंड से, कर्मकांडों से

लेकिन मौलिकता को पकड़कर रखा। इस देश का मौलिक तत्व प्रेम, एकात्म बोध, दया और करुणा, श्रद्धा, निष्ठा और आत्मीयता है। मौलिक तत्वों को अपनाकर बुद्ध ने कर्मकांडों को दूर ले जाकर रख दिया और बुद्ध इस देश के सनातन दर्शन को फिर से ले जाकर खूंटें पर बाँधते हैं, प्रेम से, श्रद्धा से, करुणा से, ममता से, संघर्ष से नहीं। इस प्रकार गौतम बुद्ध उनके पहले गुरु थे।

दूसरा बगावती नेतृत्व कबीर का था। कबीर भी धर्ममय हैं। कबीर राम का भक्त हैं। अपने आपको राम का कुत्ता कहता है, लेकिन कबीर प्रेम, करुणा, दया, ममता, श्रद्धा की वाणी बोलते हैं। उसका सारा धर्म ढाई आखर प्रेम में है। वे इस धर्म में कबीर को अपना गुरु मानते हैं। कबीर की बगावत पक्की है, लाठी लेकर बात करता है लेकिन किसी को शत्रु नहीं मानता। धर्म के आधार पर संघर्ष करता है, किसी से बैर नहीं ठानता लेकिन परिवर्तन की एक वाणी देता है। जिनको वाणी नहीं, उनको स्वर देता है, जिनको मंच नहीं है, उनको मंच देता है, जो तिरस्कृत हैं, उसको सम्मानित करता है, उसका नाम कबीर है, वह उनका दूसरा गुरु है।

तीसरा गुरु महात्मा फुले थे। भारतीय परम्परा में विराजे जो व्यर्थ कर्मकाण्ड हैं, जो व्यर्थ की मान्यतायें हैं, पाखण्ड और झूठ हैं, जो ढोंग शास्त्री की गलत व्याख्या है, उसके विरुद्ध उन्होंने भी बगावत का बिगुल बजाया। लोगों ने उनका विरोध किया लेकिन फुले डटे रहे।

ये तीनों गुरु एक दृष्टि देते हैं, एक दर्शन देते हैं, जिसके आधार पर अम्बेडकर संघर्ष को आगे बढ़ाते हैं। अम्बेडकर के सारे संघर्ष में उनका आत्मतत्व है, वह बुद्ध, कबीर और महात्मा फुले से आता है। बुद्ध, कबीर और फुले को समझे बिना अम्बेडकर को समझना अधूरा रह जायेगा।

अम्बेडकर का व्यक्तित्व बड़ा क्रांतिकारी है। वे बोलते हैं कि 'मैं किसी भी प्रकार की हीरोवर्शिप (नायक पूजा) में विश्वास नहीं रखता, व्यक्ति की पूजा मत करो'। इसलिये अपना जन्मदिन मनाने वाले लोगों को मना करते हैं कि मेरा जन्मदिन मनाने क्यों आते हो तुम लोग, भगा देते हैं, भाग जाओ यहाँ से। अम्बेडकर जी अपने

उन मित्रों को बोलते हैं कि तुम विगत पन्द्रह वर्षों से मेरा जन्म दिवस मना रहे हो किन्तु मैं कभी भी उनमें सम्मिलित नहीं हुआ हूँ। मैंने सदैव इनका विरोध ही किया है। आप लोगों ने मेरे जन्मदिन की स्वर्ण जयंती मनाई है। अब ऐसा कोई उत्सव मनाने की आवश्यकता नहीं है। अपने लिये प्रतिष्ठा माँगने वाले, प्रतिष्ठा चाहने वाले ऐसे व्यक्ति वह नहीं थे।

वे कहते हैं कि बड़े-बड़े नेताओं से, बड़ी पार्टी से, बड़े चुनावी उद्धारकों से, तुम्हारा उद्धार होने वाला नहीं है। अपना उद्धार स्वयं करने का प्रयत्न करो, अध्ययन करो, संगठित हो जाओ, आचरण ठीक रखो, जीवन में सुधार लाओ, किसी के भरोसे मत रहो। कोई दूसरा व्यक्ति आकर तुम्हारा उद्धार करने वाला नहीं है। अपने को प्रतिष्ठित करना, महिमा मंडित करना, अखबारों में फोटो

निकलवाना इससे वे बहुत दूर थे। यह उनका एक व्यक्तित्व

है। मैं तुम्हारे उद्धार के लिये किसी एक व्यक्ति के ऊपर तुमको आश्रित कर देना नहीं चाहता हूँ। अपने प्रयत्नों से, अपने समर्थ से, अपनी जीजीविषा से अपना उद्धार करने का प्रयत्न करो।

बहुत बार लोग कहते हैं कि अम्बेडकर जी स्वतंत्रता के आंदोलन में कहाँ थे? वे कहते थे कि इस देश की आजादी आनी चाहिये। जितना आप चाहते हैं, उतना ही मैं भी चाहता हूँ, लेकिन मेरे मन में एक प्रश्न है कि देश की आजादी आयेगी तो मेरी और मेरे मित्रों और बंधुओं की

आजादी आयेगी या नहीं या वे वैसे ही गुलाम बने रहेंगे। वे कांग्रेस के नेताओं से पूछते थे कि क्या आप मुझे विश्वास दिला सकते हो कि आजादी आने के बाद मेरे इन बंधुओं की भी आजादी आ जायेगी, क्या वे स्वतंत्र होंगे?

26 अप्रैल 1942 को मुम्बई में कांग्रेस के नेताओं से कहा कि मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आजादी के लिये तुम जैसे लड़ रहे हो, आपसे ज्यादा ताकत से मैं लड़ूँगा, लेकिन मुझको भरोसे तो दिलाओ कि स्वराज में मेरे समाज की क्या भागीदारी होगी? वे कहते थे कि मुझको विश्वास तो दिलाओ कि तुम मेरे बंधुओं को स्वतंत्र कर दोगे, अगर नहीं करोगे तो मैं क्या करूँगा स्वराज का? मैं

**आज
कोई कम्युनिस्ट
अम्बेडकर का चित्र बनाकर कहते
हैं कि वे वर्ग संघर्ष के पुरोधा थे,
जबकि अम्बेडकर स्वयं को कम्युनिस्टों
का कट्टर दुश्मन कहते थे। उनके अनुसार
कम्युनिस्ट राजनीतिक स्वार्थ के लिये मजदूरों
को शोषण करते थे। वह श्रमिक, मालिक
और सरकार तीनों को अलग नहीं
मानते और तीनों के मिलकर कार्य
करने के पक्षधर
थे।**

मैं किसी समुदाय की प्रगति उस समुदाय में हुई महिलाओं की प्रगति से मापता हूँ। - डॉ. अम्बेडकर



देश की आजादी चाहता हूँ, लेकिन साथ-साथ मेरे बंधुओं की भी आजादी चाहिये।

वे एक महान अर्थशास्त्री थे, लेकिन दुर्भाग्य कैसा है कि देश का कोई विश्वविद्यालय उनके आर्थिक सिद्धांतों पर शोध नहीं कराता है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी से उन्होंने एम.ए. किया, वहीं से उन्होंने पी.एच.डी. की। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उन्होंने एम.एस.सी. किया, वहीं से उन्होंने डी.एस.सी. किया। ये सारी उपाधियाँ उनकी अर्थशास्त्र की हैं।

भारत के गाँवों में कैसे जोत छोटी से छोटी होती चली जा रही है, खेती की जमीन बहुत छोटी होती चली जा रही है और वह बिखर जाती है। स्माल होलिंग से इस देश का इकोनॉमिक्स डेवलपमेंट सम्भव नहीं है। वे सौ वर्ष पहले बता रहे हैं कि इस देश का इंडस्ट्रलाइजेशन जल्दी से करो। कृषि पर दबाव बहुत ज्यादा है

80, 85 से 90 प्रतिशत आदमी कृषि पर आधारित हैं। कृषि की समस्या, गाँव की समस्या का एकमात्र समाधान भारत का औद्योगिकरण है। उन्होंने 1920 के दशक में कहा कि इंडस्ट्रलाइजेशन ऑफ इंडिया इज दी साउंडेस्ट रेमेडी फॉर एग्रीकल्चर प्रॉब्लम्स ऑफ इंडिया। सारे किसान यूरोप और अमेरिका में खेती छोड़कर उद्योग धंधों में लग गये और हम लोग सारे उद्योग धंधे बंद करके खेती में लगे हुये हैं। 80-85 प्रतिशत आदमी खेती से ही अपना विकास चाहते हैं। उनके सारे सिद्धांत और सारे शोध प्रबंध कहाँ हैं? उन पर अच्छी शोध होनी चाहिये थी, लेकिन सौ वर्ष बाद भी इसकी कोई संभावना नहीं दिखती है।

उन्होंने वंचित लोगों को सच का मंच दिया, मूक लोगों को वाणी दी, जैसा कि 'मूकनायक' नाम के उनके समाचार पत्र से हम जानते हैं। एक अस्तित्व दिया, आधार दिया, उनमें आत्मविश्वास पैदा किया। बहुत संक्षेप में उन्होंने अधिकारों के लिये लोगों को जागरूक किया, संगठित किया, अनुशासित किया, संघर्ष के लिये तैयार किया। लोगों को स्वाभिमानी बनाया, शिक्षित होने का आह्वान किया, अपने अधिकार लेने के लिये लोगों को एकत्रित किया और कई आंदोलन सफल किये।

महाड का सत्याग्रह हम लोग जानते हैं तालाब से पानी पीने की अनुमति कानूनन है, लेकिन पानी नहीं पी सकते। मुसलमान, ईसाई पानी पी सकते हैं, सवर्ण पी सकते हैं, लेकिन जो लोग अस्पृश्य कहे जाते हैं, वे नहीं पी सकते हैं। उन्होंने आंदोलन किया, पानी पिया। वहाँ के जो रुढ़िवादी लोग थे, उन्होंने पंचगव्य डालकर, उस तालाब को शुद्ध किया। जो लोग आये थे, उनके साथ मारपीट कर डाली। अम्बेडकर जी कहते हैं कि देखों अगर हम मुसलमान हो जाते हैं, तो इसी तालाब से पानी पियेंगे, तब आप हमको नहीं रोकेंगे, हम ईसाई हो जाते हैं, तब आप इसी तालाब से पानी पीने देंगे, आप हमें नहीं रोकेंगे। हम हिन्दू हैं, हिन्दू रहना चाहते हैं, इसलिये आप हमें पानी नहीं पीने देना चाहते हैं। हमें क्यों पानी पीने नहीं देते हैं? ऐसा ही सत्याग्रह उन्होंने नाशिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिये किया। हम हिन्दू हैं। हम मंदिर में दर्शन के लिये जाना चाहते हैं, लोगों ने विरोध किया, मारपीट की। वे कहते हैं कि -

यह जो अस्पृश्यता है, हिन्दू समाज के ऊपर लगा हुआ एक कलंक है, इसे हम दूर करेंगे। वे संघर्ष करते हैं तो अम्बेडकर जी

वक्तव्य शक्ति प्राप्त करने के लिये शिक्षार्थियों को साधना करनी होगी। प्रयासों से तो असम्भव भी सम्भव है - डॉ. अम्बेडकर



का स्वर बदल जाता है। अम्बेडकर जी कहते हैं कि यह हिन्दू धर्म के ऊपर लगा हुआ कलंक नहीं है, यह कलंक हमारी देह पर लगा है। अर्थात् जो अस्पृश्य हैं, उनके शरीर पर लगा कलंक है। इसे दूर करने की जिम्मेदारी उन लोगों की नहीं है, जो अपने आपको सर्वर्ण कहते हैं, यह जिम्मेदारी हमारी है, हम स्वयं इसको दूर करेंगे। अब हम लोग स्वयं इस संघर्ष को अलग प्रकार से चलायेंगे। याचना का स्वर बंद हो गया।

हम कहते हैं कि उनके जीवन में कई चरण अलग-अलग प्रकार के हैं। कभी ऐसा लगता है, वह कहते हैं कि गीता मेरे सत्याग्रह करने की प्रेरणा का स्रोत है। गीता मुझे सत्याग्रह करने के लिये आह्वान करती है। अपने अखबार के ऊपर जय भवानी लिखते हैं, अपने आपको हिन्दू कहने में गौरवान्वित होते हैं। सैकड़ों लोगों का यज्ञोपवीत करवाते हैं। आगे चलकर उनका स्वर बदल गया है। उन्होंने कहा कि हिन्दू समाज हमें सम्मानित करता ही नहीं, हम क्या करें? वे यह कहते हैं कि हम आपस में सुधार लायेंगे। सामाजिक सुधार, राजनीतिक सुधार और आर्थिक सुधार, इन तीनों के लिये संघर्ष का आयाम बदला।

वे परिवर्तन का आधार धर्म मानते हैं, समाज सुधार का आधार भी धर्म है। धर्म के प्रति नवयुवकों को उदासीन देखकर उनके मन को दुख होता है। वे कहते हैं कि धर्म आशा देता है, धर्म विश्वास देता है धर्म समाज में मान्यताओं को स्थापित करता है। धर्म का अर्थ है परमार्थ का चिंतन करना, धर्म का अर्थ है अपना पेट भरने के साथ-साथ दूसरे के पेट की भी चिंता करना। अपना पेट भरने का काम तो भिखमंगे भी कर लेते हैं। धार्मिक लोग सभी की चिंता करते हुये आगे बढ़ते हैं। समाज के कल्याण की भावना धर्म के अंदर निहित है। इसलिये वे मार्क्सवादियों के विरुद्ध हैं। वे

कहते हैं कि मार्क्सवादी धर्म को अफीम मानते हैं। इनको मक्खन और टोस्ट मिला, मुर्गे की टाँग मिली, वे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं इनके मत का समर्थन नहीं करता हूँ। इसलिये मौलिक सिद्धांत बचाकर, रखकर, इस समाज में परिवर्तन लाना है। लेकिन साथ ही साथ बोलते हैं, धर्म के नाम पर जो पाखण्ड है, यह धर्म का मजाक है। मैं इसको मानने के लिये तैयार नहीं हूँ।

वे कहते हैं कि द्वेष और वैमनस्य, कभी भी सुधार के आधार नहीं बन सकते। सुधार का आधार इस देश में केवल और केवल धर्म बनेगा। वे कहते हैं कि राजनीतिक सुधारों से ज्यादा महत्वपूर्ण है सामाजिक सुधार। राजनैतिक सुधार आप कर देंगे, संविधान का अधिकार आप दे देंगे, तब भी उनका पालन कौन करेगा? अगर पालन करने वाली आत्मिक भावनायें समाज में नहीं होगी, समाज उसे मान और सम्मान नहीं देगा, तो सुधार केवल कागजों में रह जायेंगी।

यह भी कहते हैं कि 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हमें तीनों की आजादी चाहिये और किसी एक के अभाव में आजादी अपूर्ण रह जायेगी।' वे सावधान करते हैं कि देश स्वतंत्र तो हो रहा है लेकिन करोड़ों लोगों का क्या होगा? उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी है? अगर आर्थिक विपन्नता बनी रही तो राजनीतिक स्वतंत्रता का लम्बे समय तक कोई अर्थ नहीं रहेगा।

अस्पृश्यता के बारे में उनका एक मत है। वे कहते हैं कि इस देश में अस्पृश्यता कभी थी ही नहीं। दो हजार साल पहले अस्पृश्यता का शब्द इस देश के किसी भी शास्त्र में नहीं है, न वेद में है, न उपनिषद में है, न ब्राह्मण ग्रंथों में है, न आरण्यक में न गीता में है। यह कहाँ से आया, कैसे आया? वे बताते हैं कि मुश्किल से बारह, तेरह सौ वर्ष पहले से अस्पृश्यता आई है।

अम्बेडकर कहते हैं कि गाय के माँस का भक्षण इस देश में जब अक्षम्य अपराध हो गया तब से अस्पृश्यता आई। सबसे पहला अस्पृश्यकता का उदाहरण है, वह दाहिर के परिवार में आया। दाहिर हार गया और दाहिर के महल में ये आक्रमणकारी मुसलमान लोग घुसे तो दाहिर के परिवार की महिलायें बोलती हैं कि वे आ रहे हैं, स्लेच्छ हैं, हमें स्पर्श करेंगे, हम तो अपवित्र हो जायेंगे। उनके स्पर्श करने के पहले अपने को मर जाना चाहिये। इसलिये अग्नि तैयार करो। यह जो अस्पृश्य शब्द महिलायें बोलती हैं, भारतीय इतिहास में पहला उदाहरण है।

देश अपनी स्वतंत्रता की रक्षा कैसे करेगा ? क्या उसे फिर जयचंदों का सामना तो नहीं करना पड़ेगा ? देश का राजकाज चलाने वाले लोग कैसे होंगे ? इस तरह की चिंतायें डॉ. अम्बेडकर बेबाकी से व्यक्त करते रहे। चीन का भारत की सीमा तक आ जाना भी उन्हें विचलित करता था और कश्मीर को अनुच्छेद 370 देने से भी वह सहमत नहीं थे। राज्यों का भाषा के आधार पर विभाजन भी उन्हें पसंद नहीं था।

उन्होंने कम्युनिस्टों के बारे में बहुत कुछ बोला है। 1937 में मैसूर के एक दलित वर्ग के सम्मेलन में वे बोल रहे थे कि मैं कम्युनिस्टों से मिल जाऊंगा, ऐसा कुछ लोग बोलते हैं, इसकी जरा भी सम्भावना नहीं है। अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिये मजदूरों का शोषण करने वाले कम्युनिस्टों का मैं कट्टर दुश्मन हूँ।

मनुष्य केवल रोटी पर जिंदा नहीं रहता। उसके पास मन है। उस मन को विचार की खाद चाहिये। धर्म मनुष्य के मन में आशा का संचार करता है। उसे काम करने के लिये प्रवृत्त करता है, लेकिन मार्क्सवादी लोग धर्म को अफीम मानते हैं, जो कम्युनिस्ट वर्ग आज अम्बेडकर का चित्र लगाकर आज कहते हैं कि वे वर्ग संघर्ष के पुरोधा थे, यह बात कैसे मानी जाये ?

वर्ष 1942 से 1946 तक अम्बेडकर वायसराय की काउंसिल में लेबर मिनिस्टर रहे। वे पहले व्यक्ति रहे जिन्होंने मजदूरों की सुरक्षा नीति तैयार कराई। वे पहले मंत्री थे, जिन्होंने लेबर पॉलिसी तैयार कराई। श्रमिक, मालिक और सरकार तीनों अलग-अलग नहीं हैं, मिलकर बैठों, मजदूरों का हित, उद्योग का हित और सारे समाज का हित अलग-अलग नहीं है, विरोधाभासी नहीं है, तीनों मिलकर कार्य करें। त्रिपक्षीय वार्ता तब से शुरू हुई। मजदूरों के लिये उन्होंने कानून बनाये। उद्योगों से जुड़े हुये झगड़ों के निपटारे के लिये उन्होंने समितियाँ बनाई।

मिनिमम वेजेज, फैक्ट्री एक्ट, प्रोविडेंट फण्ड ओवर टाईम के लिये एक्सट्रा पेमेंट, सब्सिडाइज्ड फूड, फैक्ट्री के अंदर कैंटीन, फैक्ट्री के अंदर मेडिकल ऐड ये सारे प्रावधान श्रम क्षेत्र में लाने वाले अम्बेडकर ही थे। चीफ लेबर कमिश्नर, प्रोविंशियल लेबर कमिश्नर, लेबर इंस्पेक्टर्स की नियुक्तियाँ करवाने वाले डॉ. साहेब ही थे। प्रसूति अवकाश मिले, इसके लिये डॉ. साहेब ने मुम्बई

की असेम्बली में जमकर संघर्ष किया। महिलाओं को पूरा प्रसूति अवकाश चाहिये।

वे संविधान सभा में गाँधी जी के कारण आये। गाँधी जी के साथ उनका विवाद भी चलता रहता था, लेकिन जब देश का संविधान बनने को आया और गाँधी जी ने वल्लभ भाई पटेल और जवाहरलाल नेहरू जी को बुलाकर पूछा कि किसको काम सौंप रहे हैं आप लोग, तो जवाहरलाल नेहरू जी ने कहा कि हम जर्मनी के ख्याति प्राप्त संविधानविद् सर ज्योर जेरी को बुला रहे हैं। गाँधी जी ने कहा इतना बड़ा देश है, दुनिया क्या कहेगी कि इस देश में कोई संविधान बनाने वाला नहीं है। तब गाँधी जी ने कहा -डॉ. अम्बेडकर को दो न, वह बहुत विद्वान व्यक्ति हैं, उनको यह काम दे दो।

हम जानते हैं कि वे संविधान सभा में आये, ड्राफ्टिंग कमेटी में आये, चेयरमैन बने, संविधान बना, अंतिम भाषण का एक पैराग्राफ आपके सामने रखता हूँ। हमको यह भी ध्यान में आयेगा कि इन सारी विपरीत परिस्थितियों में भी उनका मन कितना उदार, कितना बड़ा है, चिंतन समाज को जोड़ने वाला है, वे कृतज्ञता से भरे हैं। वे बोलते हैं कि मैं संविधान सभा में आया, तो अपने जो पिछड़े बंधु हैं (अर्थात् जो अस्पृश्य बंधु हैं), उनके हितों के संरक्षण का ध्यान एकमात्र ध्यान था। मुझको सपने में भी उम्मीद नहीं थी कि मैं ड्राफ्टिंग कमेटी में आऊंगा। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जब मुझे इसका अध्यक्ष बनाया, जबकि मुझसे अधिक योग्य, अधिक क्षमतावान लोग यहाँ पर थे।

वे रेडियो पर अपना एक भाषण 1954 में दे रहे थे। संविधान बन चुका था। वे मजाक करते थे, थोड़ा-सा व्यंग्य भी है, लेकिन कहीं मन में वेदना भी है। हिन्दुओं को जब वेद चाहिये थे तो उन्होंने एक निम्नवर्णीय व्यास को यह कार्य सौंपा। वेदों के संपादन का कार्य वेद व्यास ने किया था। हिन्दुओं

को जब महाकाव्य रामायण चाहिये थी तो उन्होंने वाल्मीकि को याद किया और वाल्मीकि से रामायण लिखवाई। हिन्दुओं को राज्य का संविधान चाहिये था तो उन्होंने मुझको बुला लिया।

25 नवम्बर 1949 को संविधान सभा में अंतिम भाषण में, संविधान सफल हो

जायेगा या संविधान फेल हो जायेगा इस सवाल पर अम्बेडकर जी कहते हैं कि – यह इस बात पर निर्भर करेगा कि यह कैसे लोगों के हाथ में रहेगा। संविधान कोई अच्छा या बुरा नहीं होता। बुरे से बुरे लोग होंगे, लेकिन अच्छे से अच्छा संविधान होगा, तो उसको भी असफल कर देंगे। इसलिये संसद, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों मिलकर अच्छे लोगों का सहारा लेकर, संविधान को सफल करेंगे, यह उन्हीं पर निर्भर करेगा। व्यक्ति अच्छे होने चाहिये, वे बोलते हैं कि यदि राजनीतिक दल, दलों की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में राष्ट्र की महत्वाकांक्षाओं को छोड़ देंगे। तो क्या यह सफल होगा, कुछ सफल नहीं होगा। वे बोलते हैं कि 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र हो जायेगा। लेकिन क्या हम पहले स्वतंत्र नहीं थे, क्या यह स्वतंत्रता स्थिर और स्थायी रहेगी? हम क्यों गुलाम हुये? वे बोलते हैं कि मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ, तो यहाँ का सेनापति वहाँ जाकर मुगलों से मिल गया। ब्रिटिश लोग लड़ रहे थे, सिख राज्य को समाप्त कर रहे थे, गुलाब सिंह शांत बैठे थे। सन् 1857 में जब देश स्वतंत्रता के लिये संघर्ष कर रहा था, तब कई लोग शांत बैठे थे। यह विचार मुझको व्यग्र कर देता है, क्या हम अपनी स्वतंत्रता को बनाये रखेंगे? इस देश के बारे में वे कितने चिंतित हैं? स्वतंत्रता तो आ रही है, हमारा संविधान भी आ रहा है। इस देश के लोग कैसा व्यवहार करेंगे, क्या देश के लोग देशभक्त रहेंगे या नहीं उनकी चिंता का सबसे बड़ा प्रश्न यह है।

भाषा के आधार पर जब प्रांत रचना प्रारम्भ होने को आई, तो अम्बेडकर ने कहा, मैं नहीं समझता, एक ही भाषाभाषी सब मिलकर एक राज्य में आने चाहिये, इसकी क्या आवश्यकता है, सारे भाषाभाषी को बुलाकर एक राज्य में उनको इकट्ठा कर देने का क्या मतलब है? इसलिये सारे तेलुगू राज्य में सारे मराठी बोलने वाले एक मराठी राज्य में, सारे हिन्दी बोलने वालों को एक बड़ा

मैं हिंदी भाषी नहीं हूँ। किन्तु हिंदी को सभी प्रांत स्वीकार करें और अपने-अपने प्रांतों में हिंदी पढ़ायें, तभी इस देश को हम ठीक प्रकार से एकात्म और बड़ा करके रख सकते हैं।

प्रांत, यह आवश्यकता मैं नहीं समझता। एक भाषाभाषी का एक प्रांत या एक प्रांत की एक भाषा, इन दोनों में अंतर है। वे कहते हैं कि एक भाषाभाषी को एकत्रित करके एक प्रांत में ला देना, यह मेरी समझ के बाहर है। राजनीतिक रचना प्रशासनिक आधार पर होनी चाहिये, जो सबके लिये अनिवार्य हो।

वे विदेश नीति पर बोलते हैं, 15 अगस्त 1947 को जब हम स्वतंत्र हुये, हमारा कोई दुश्मन नहीं था। आज 1948-49 में क्या हो गया? जब कश्मीर का मुद्दा लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत गया, तो भारत का समर्थन करने वाला कोई भी देश वहाँ नहीं मिला। तिब्बत पर चीन का आक्रमण हुआ, तो अम्बेडकर जी ने कहा, यह क्या हो रहा है? हमारे प्रधानमंत्री क्या कर रहे हैं? भविष्य में चीन की सीमा हमारी सीमा से लग जायेगी, क्या यह खतरा उनको नहीं दिखता है? चीन हमारे दरवाजे पर आ रहा है, नेहरू जी सपनों की दुनिया में रह रहे हैं। हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते।

संविधान के अनुच्छेद 370 पर शेख अब्दुल्ला से उनकी बातचीत हुई। शेख अब्दुल्ला से बोलते हैं, आप मेरे साथ हैं, भारत कश्मीर की रक्षा करेगा। कश्मीरियों को पूरे भारत में समान अधिकार होंगे। परन्तु आप भारत और भारतीयों को कश्मीर में पूरे अधिकार नहीं देना चाहते? मैं भारत का कानून मंत्री हूँ और मैं अपने देश के साथ इस प्रकार की धोखाधड़ी और विश्वासघात में शामिल नहीं हो सकता। 370 के ऊपर उनका यह मत क्या आज के राजनीतिक नेताओं को और सभी दलों को मालूम है?

उन्होंने कहा कि यह कहना कि आर्य लोग बाहर से आये, यह मूलतः गलत सिद्धांत है। कायरतापूर्ण नीति है। जिस प्रकार से अमेरिका में यूरोप के लोग पहुँच गये और वहाँ के स्थानीय लोगों को मारकर भगाया, जैसा कनाडा में बाहर के लोग गये, आस्ट्रेलिया में गये, ऐसे ही वे यहाँ स्थापित करना चाहते हैं कि आर्य लोग बाहर से आये, स्थानीय लोगों को मारकर भगाया और उसमें से दलित लोग पैदा हो गये, यह गलत है।

आज के समाजशास्त्री, राजनीतिक क्षेत्र के लोग उनके इस सिद्धांत पर नहीं बोलते हैं, वे चुप्पी साधे हुये हैं। अम्बेडकर जी कहते हैं कि यह कल्पना ही गलत बनाई गई थी और इसे स्थापित करने के स्रोत ढूँढे गये। आर्य कोई नस्ल नहीं थी। अम्बेडकर जी

लिखते हैं कि ऋग्वेद में 33 बार आर्य शब्द का प्रयोग आया है, एक स्थान पर भी वह नहीं है। सभी स्थानों पर उसका अर्थ गुणवाचक है।

अम्बेडकर जी ने कहा शूद्र लोग जो भारत में हैं, वे सब आर्य हैं और शूद्र भी क्षत्रीय हैं। ऋग्वेद के नौ मंडल में कहीं भी शूद्र शब्द नहीं है। दशम मंडल में बाद में जोड़ा है। उसके बाद ही शूद्र शब्द आया है। वे कहते हैं कि शूद्र आर्य थे और शूद्र क्षत्रीय वर्ग में थे। राजा वेन, राजा पुरुवा, राजा नहुश, राजा नीमि और राजा सुदास राजाओं के ब्राह्मणों के साथ संघर्ष हुये। ब्राह्मणों पर इन्होंने अत्याचार किये। इतने अत्याचार हुये कि ब्राह्मण लोग कराह उठे। इस प्रतिशोध का बदला कैसे लिया जाये, इन्होंने उन क्षत्रियों का यज्ञोपवीत कराना बंद कर दिया। यह दण्ड पर्याप्त था। अम्बेडकर बोलते हैं कि क्षत्रियों का एक वर्ग जिनका यज्ञोपवीत नहीं हो सका वे धीरे-धीरे शिक्षा के क्षेत्र से भी वंचित हो गये। उपनयन पहनना या न पहनना, यह महत्व की बात नहीं थी, महत्व की बात थी उपनयन पहनने का अधिकार रखना या नहीं रखना। इनको अधिकार ही नहीं था। धीरे-धीरे सामाजिक परिस्थिति में गिरते चले गये। आज जो शूद्र हैं, वे सब पुराने क्षत्रीय हैं। उनके कुल और वंश का ही है।

वे लिखते हैं कि शूद्र आर्य थे, शूद्र सूर्यवंशी थे, शूद्रों की गणना क्षत्रियों में होती थी, कुल तीन ही वर्ण थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। एक बार जिनको यज्ञोपवीत से वंचित कर दिया, उसका यज्ञोपवीत कराने के लिये कोई सामने नहीं आता था।

जब तय हुआ कि शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक होगा। तब कुछ लोगों ने प्रश्न खड़ा कर दिया कि शिवाजी महाराज क्षत्रीय नहीं है, इनका राज्याभिषेक कैसे होगा? समर्थ गुरु रामदास ने काशी से गंगाभट्ट को बुलाया, गंगाभट्ट ने एक वंशावली निर्माण की। उस वंशावली में गंगाभट्ट ने पक्का किया कि शिवाजी महाराज कुछ पीढ़ी पहले राजस्थान से आये एक क्षत्रीय हैं। उनका यज्ञोपवीत हो सकता है।

शिवाजी का राज्याभिषेक होने के पहले यज्ञोपवीत हुआ,

उसके पहले उनके दो विवाह हो चुके थे। उनके दो पुत्र भी थे, राजाराम और सम्भाजी। शिवाजी का यज्ञोपवीत हुआ, उसके बाद लोगों ने आख्या दी कि अब शिवाजी का पुर्नविवाह होगा। अपनी ही पुरानी पत्नियों और बच्चों के सामने बैठकर शिवाजी का फिर विवाह हुआ। इसके बाद राज्याभिषेक हुआ। हम यह कह सकते हैं कि एक परम्परा आ जाती है तो कितनी गहरी जड़ जमाती है।

अम्बेडकर जी बताते हैं कि पंजाबी जो अस्पृश्य कहे जाते हैं, चूहड़ और संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) के ब्राह्मण, उनका जो नेजल इंडेक्स है वह बराबर है बिहार में चमार, अस्पृश्य

हैं और बिहार के ब्राह्मणों का नेजल इंडेक्स बराबर है। कर्नाटक के अस्पृश्य और वहाँ के ब्राह्मणों का नेजल इंडेक्स बराबर है। तमिलनाडू के चेरमल और वहाँ के ब्राह्मण, आयंगर और अय्यर का नेरल इंडेक्स बराबर है। वे बताते हैं चाहे बिहार हो या पंजाब हो, महाराष्ट्र हो, तमिलनाडू हो वहाँ के रहने वाले अस्पृश्य और तथाकथित सवर्ण एक ही नेजल इंडेक्स के हैं।

बड़े-बड़े नृ विज्ञानियों का मानना है कि

इन सब जातियों के गोत्र तो एक ही हैं। जो गोत्र अस्पृश्यों के हैं, वही गोत्र वहाँ के ब्राह्मणों के हैं इसलिये यह कहा जा सकता है कि इन सबके पूर्वज कहीं न कहीं एक ही हैं।

भारत में जो मुस्लिम समस्या है, एक बड़ी समस्या है। उसके ऊपर मोटा शोध ग्रंथ उन्होंने लिखा है। इसका समाधान कैसे होगा, हमें उसका अध्ययन करना चाहिये। वे कहते हैं कि कांग्रेस जिस तरह (मुसलमानों की) सारी मांगों को मानती चली जाती है, उससे वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेगी। ऐसी मांगों को मानते जाने से कोई भी समता या समानता का व्यवहार कभी हो नहीं सकेगा। वे कहते हैं कि जब साइमन कमिशन भारत में आया, तब मुस्लिम लीग ने यह माँग की कि बाम्बे प्रेसीडेंसी में से सिंध को अलग कर दो। अम्बेडकर कहते हैं कि इस माँग की क्या जरूरत थी? बाम्बे प्रेसीडेंसी में से सिंध को अलग क्यों करना? जिलों में मुसलमान बहुसंख्यक थे, यह सच बात है। लेकिन बहुसंख्यक हैं, उसको अलग राज्य बना देना, यह आवश्यक है क्या? अम्बेडकर जी ने

**उन
के पास पोप के
प्रतिनिधि आये, निजाम के
लोग भी आये। सबको मना
किया। मैं यदि ईसाइयत में गया या
इस्लाम स्वीकार किया तो यह देश एक
बड़े खतरे में चला जायेगा। इसलिये मैं
उसी रास्ते को अपना रहा हूँ, जिससे
इस देश के मौलिक तत्व-ज्ञान
के साथ जुड़ा रहूँगा।**

उस समय अपनी एक अलग रपट दी। बाम्बे प्रेसीडेंसी के अम्बेडकर जी भी सदस्य थे। अम्बेडकर जी ने कांग्रेस की इस राय का विरोध किया। बाद में सिंध प्रांत अलग बना और कम्युनल अवार्ड 1932 में अम्बेडकर जी ने दोनों बातों का जमकर विरोध किया। अम्बेडकर जी कहते हैं कि मौलाना आजाद कांग्रेस के बड़े राष्ट्रवादी हैं, लेकिन वे बोल क्या रहे हैं? उन्होंने कहा हिन्दुओं के पास नौ प्रांत हैं, जहाँ बहुसंख्यक हैं, सिंध एक नया प्रांत बनने से अब मुसलमानों के पास पाँच होंगे जहाँ वह बहुसंख्यक होंगे। हिन्दू लोग कुछ करते हैं, तुम यहाँ बदला ले सकते हो। अम्बेडकर जी कहते हैं कि क्या यह आप लोगों को राष्ट्रवादी लोगों की भाषा प्रतीत होती है? वे बोलते हैं, कम्युनल अवार्ड में परसेंटेज मुसलमानों को हिन्दु प्रांत दिया गया है अल्पसंख्यक मानकर, वहीं हिस्सा, हिन्दुओं को उन मुस्लिमों में दिया जायेगा, जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, उनकी सीटें बढ़ाई हैं, तो जहाँ हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, उनकी सीट आप लोग क्यों नहीं बढ़ाते हैं? अम्बेडकर जी ने कहा ये पृथक मतदाता मंडल इसका मतलब ये है कि हमेशा के लिये अलगाव हो जायेगा। इसलिये मुसलमानों को सीट आरक्षण ठीक है, लेकिन उनके चुनाव संवर्ग को अलग कर देना, भयंकर बीमारी है, जो कभी नहीं रुकेगी।

डॉ. अम्बेडकर जी कहते हैं कि कौन से मुद्दे ऐसे हैं, जहाँ एकता हो सकती है, वे कहते हैं सन् 1711 से लेकर जो इतिहास है वह युद्ध आक्रमण का और क्रूरतम घटनाओं का है। वे कहते हैं कि मुसलमानों में अनेक आक्रमणकारी थे, जिन्होंने भारत पर आक्रमण किये, उन सभी का सम्मिलित उद्देश्य एक था, हिन्दू धर्म का विनाश। वे कहते हैं ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक और सामाजिक विरोध की नदी खड़ी कर देते हैं। जो हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करते हैं वे इस बात का ध्यान में रखें कि इस विरोध का कारण ऐतिहासिक है, धार्मिक है, सांस्कृतिक है, सामाजिक है, राजनीतिक विरोध दिख रहा है, वह ऊपर का है, सब मिलाकर इनकी बड़ी गहरी खाई खड़ी हो जाती है, जिसको पाटना इतना आसान काम नहीं है। मौलाना मुहम्मद अली अपने आपको सच्चा मुसलमान मानते हैं। जो सच्चा मुसलमान अपने को मानता है वह भारत में अपने को दफनाने से मना कर देता है। येरूशलम में जमीन मांगकर उसको दफनाने के लिये ले जाया जाता है। अम्बेडकर जी कहते हैं कि क्या सच्चा मुसलमान भारत को अपनी मातृभूमि

मानेगा। मानलो अगर अफगानिस्तान के आक्रमण के समय यहाँ के मुसलमानों का व्यवहार कैसा रहा है, क्या हम उसे भूल जायें? वे आगे बोलते हैं, अगर विभाजन आवश्यक और अटल है, तो एक बार सारी जनसंख्या की अदला बदली कर दो, हमेशा के लिये इस समस्या का समाधान हो। मैं मुस्लिम भारत और गैर मुस्लिम भारत में विश्वास करता हूँ। यूरोप ने इस समस्या से समाधान पाया है। मिस्र, बल्गेरिया सहित आठ देशों ने अपने अल्पसंख्यकों की पूर्ण अदला-बदली की और इस समस्या से वे बाहर आये।

हैदराबाद में अनुसूचित वर्ग के जो लोग रह रहे थे, उनको उन्होंने चेतावनी दी। उन्होंने सरकार को भी कहा, विभाजन से पहले लोगों की सुरक्षा की गारंटी तो लो। क्या होगा उसके बाद? हैदराबाद में बड़ी संख्या में लोग रह गये, उन लोगों पर खतरा था। इत्तेहादे मुसलमीन उन्हें मुसलमान बना रही थी। वे असाहय थे, अम्बेडकर जी ने पत्र उन लोगों को भेजा और कहा कि तुम किसी भी तरीके से भारत में आ जाओ, मैं हिन्दू शास्त्रों की उन बातों को नहीं मानता, एक बार हिन्दू धर्म से हो गया, हमेशा के लिये चला गया, मैं तुम्हें शुद्ध करके फिर से हिन्दू बनाऊंगा, तुम भारत में आ जाओ। यह अम्बेडकर के व्यक्तव्य है, हैदराबाद के अपने अनुसूचित वर्ग के लोगों के लिये।

हम देखते हैं कि उन्होंने संकल्प लिया था, मैं हिन्दू समाज को एक झटका जरूर दूँगा। एक शॉक ट्रीटमेंट जरूरी है। 1935 में उन्होंने कहा, मैं जन्मा तो हिन्दू था, मरूँगा नहीं। 21 साल तक धैर्य से उन्होंने हिन्दू समाज को प्रतीक्षा के लिये समय दिया। हिन्दू समाज को ब्रेक दिया, कहा कि हिन्दू समाज अच्छा सकारात्मक उत्तर देगा। 21 साल प्रतीक्षा करने के बाद 1955 में लगने लगा कि मेरा जीवन लम्बा नहीं है गाँधी जी को उन्होंने वचन दिया था, मैं कम से कम हानि करूँगा। देश का अधिक से अधिक हित हो, वही रास्ता अपनाऊँगा। इस कारण उन्होंने बौद्ध मत अपनाया। 1935 से लेकर 1956 तक उन्होंने प्रतीक्षा की कि हिन्दू समाज क्या प्रतिक्रिया करता है, हिन्दू समाज उदार मन को दिखाता है या नहीं। अंत में वे बौद्ध बने।

उनके पास पोप के प्रतिनिधि आये, निजाम के लोग भी आये। सबको मना किया। मैं यदि ईसाईयत में गया या इस्लाम स्वीकार किया तो यह देश बड़े खतरे में चला जायेगा। इसलिये मैं उसी रास्ते को अपना रहा हूँ, जिससे देश के मौलिक तत्व ज्ञान के साथ मैं जुड़ा रहूँगा। दलाई लामा बुद्धिस्ट और हिन्दु दोनों आध्यात्मिक भाई हैं।

संविधान मात्र वकीलों का दस्तावेज नहीं, यह जीवन का एक माध्यम है। — डॉ. अम्बेडकर



उन्होंने वह रास्ता अपनाया, जिससे देश को कम से कम हानि हो, इस देश की सांस्कृतिक, वैचारिक, दार्शनिक विरासत से वे जुड़े रहे। संक्षेप में अगर कहें तो अम्बेडकर का जीवन एक बहुआयामी जीवन है। बहुत सारे विषयों पर उन्होंने बेबाक लिखा है, अध्ययन के साथ लिखा, अनुभव के साथ लिखा। बहुत गरीबी में अस्पृश्यता के अपमानजनक वातावरण में पला और बड़ा बालक सबसे अच्छी डिग्री प्राप्त करने के बाद भी सम्मान नहीं प्राप्त कर सका। इतनी वेदना में कुछ बातें मन में आ सकती हैं। वह लोगों को खराब लग सकती है। उन्होंने 'रिडल्स इन हिन्दुइज्म' पुस्तक भी लिखी, लेकिन प्रकाशित नहीं कराई। उसे उन्होंने जीवन पर्यन्त अपनी अलमारी में ही रखे रहने दिया, मरने तक भी उसे नहीं निकाला। वह गुस्से में थे, प्रतिक्रिया में थे। बाद में मन बदल गया उसमें कई लाईन गायब हैं, नीचे सम्पादक नोट में लिखा है कि इन पंक्तियों को दीमक खा गई।

उनके जीवन में कई उतार-चढ़ाव आये। समाज की परिस्थिति जैसे-जैसे बदली, उनका थोड़ा-थोड़ा मत भी बदला, लेकिन देशभक्ति का भाव, सारे समाज को साथ लेकर चलने का भाव नहीं बदला। यह मौलिक था इसलिये वे जन्म से लेकर जीवन के अंतिम श्वास तक भारतीय ही रहे। वे बौद्ध मत में जरूर चले गये। हिन्दू समाज के अंदर जो ढोंग था, पाखण्ड था, कर्मकांड का अतिरेक था, अमानवीय व्यवहार था, इससे उनको गुस्सा था।

लेकिन वे मौलिक दर्शन से भारतीय धरती से जुड़े रहे।

उनका जीवन बड़ा अशांत था, लेकिन मन सदैव शांत रहा। संघर्षमय जीवन था, लेकिन उनका शत्रु कोई नहीं। ब्राह्मणवाद का उन्होंने विरोध किया, लेकिन ब्राह्मण उनके अच्छे मित्र थे। प्रारम्भ में वे रामभक्त दिखते हैं, राम मंदिर में जाने का प्रयास करते हैं, लेकिन बाद में हिन्दू धर्म में नहीं रहने का भी कहते हैं। वे पृथक मतदाता मण्डल का विरोध करते हैं, लेकिन बाद में इसकी माँग भी करते हैं। पूना समझौते के समय गाँधी जी को कड़ा बोलते हैं और बोलते हैं कि महात्मा आयेंगे, महात्मा जायेंगे, महात्मा कोई अमर नहीं है, लेकिन महात्मा गाँधी की मृत्यु पर काफी दुखी भी हैं। महात्मा गाँधी भी उनको संविधान निर्माण के लिये बुला लेते हैं।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हमको लगता है कि वे दूर खड़े हैं, लेकिन मन से साथ खड़े हैं। वे 'रिडल्स इन हिन्दुइज्म' लिखते जरूर हैं, लेकिन छपवाते नहीं हैं। हिन्दू धर्म को छोड़ने की घोषणा करते हैं किन्तु 21 साल तक प्रतीक्षा भी करते हैं। कांग्रेस के घोर विरोधी हैं, लेकिन कांग्रेस के मंत्रिमण्डल में भी जाते हैं। हम कह सकते हैं कि एक विराट हृदय लेकर पैदा हुये वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जो इस देश को सौभाग्य से मिले थे। उनका महान जीवन बहुत सारी बातों को लेकर है। प्रारम्भ में बताया कि ऐसे जो विलक्षण लोग होते हैं, उनका एकाध गुण ऐसा होता है, जो नियति उनके लिये निश्चित कर देती है और शेष प्रतिभायें छिप जाती हैं।

अंत में मेरी यही प्रार्थना है कि डॉ. अम्बेडकर जी को हम सापेक्षता में पढ़ें, समग्रता में अध्ययन करें। वे जिस उद्देश्य में निकले थे, वह उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ है। गाँव-गाँव में क्या व्यवहार होता है, वह स्थिति सबके ध्यान में है। सामाजिक विषमता का, चाहे वह आर्थिक हो, सामाजिक हो, राजनीतिक हो, उसको कैसे शीघ्र-अतिशीघ्र दूर करें और सारा देश, एकजुटता के साथ खड़ा हो। देश का भविष्य अच्छा हो। देश अपने गौरव को प्राप्त करे। हमारा समाज एक भावना से, एक विचार से, एक आत्मभाव से मिलकर खड़ा हो जो वैदिक ऋषियों की कल्पना थी, महात्मा बुद्ध की जो मान्यता थी, उसको लेकर हम खड़े हों और विश्व में अपना एक ऊँचा स्थान बनायें और यही डॉ. अम्बेडकर जी की भी इच्छा थी।

साभार - पाँचजन्य

न्याय हमेशा समानता के विचार को पैदा करता है। - डॉ. अम्बेडकर

बाबा साहब के अनछुए पहलु

बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर के जीवन के अनेक आयाम हैं, जिन्हें शब्दों में बयान करना संभव नहीं है। उनका संघर्ष अतुलनीय है। प्रस्तुत लेख उनके जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं को उजागर करने का एक प्रयास मात्र है।

भीमराव की प्रारंभिक शिक्षा - एक बार गणित के शिक्षक ने सब बच्चों को एक सवाल हल करने को कहा परंतु कोई बच्चा सवाल हल न कर सका। जब भीमराव ने सवाल हल करने का अनुरोध किया और जैसे ही वह ब्लैक बोर्ड के पास पहुंचे। कक्षा में भारी शोर शराबा मच गया। गुरु जी..... गुरु जी..... भीमराव को रोको कारण था। ब्लैक बोर्ड के पास सवर्ण बच्चों के खाने के डिब्बे रखे थे। बच्चों ने तुरंत अपने डिब्बे हटाए तब भीमराव सवाल हल कर सके। बालक भीमराव के मन में हमेशा एक प्रश्न उठता था कि “एक मानव के साथ दूसरा मानव ऐसा बर्ताव कैसे कर सकता है।” परंतु इसका जवाब किसी के पास नहीं था। पग-पग पर तिरस्कार के कड़वे घूंट पीने के बाद भी उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी।

बाबा साहब की संकल्प भूमि - 21 अगस्त, 1917 को भीमराव लंदन से बम्बई पहुंचे और छात्रवृत्ति के इकरारनामा के अनुसार नौकरी करने के लिए बड़ौदा चले गए। महाराजा ने उन्हें ‘सेना सचिव’ नियुक्त किया। विदेश से डिग्रियां लेने के बावजूद जातिवाद ने बाबा साहब का पीछा नहीं छोड़ा। रियासत का चपरासी भी फाइल हाथ में देने की बजाए दूर से ही फेंककर देता था। कोई उन्हें पानी नहीं पिलाता था। उनकी कुर्सी अलग दूर होती थी। पूरे बड़ौदा शहर में उन्हें रहने के लिए एक कमरा तक नहीं मिला। मजबूरीवश उन्हें एक नकली नाम एदल सोराबजी नाम से एक पारसी धर्मशाला में ठहरना पड़ा परंतु शीघ्र ही राज खुल गया और वहां से भी उन्हें निकाल दिया गया। 23 सितंबर, 1917 को एक वट वृक्ष के नीचे रात बितानी पड़ी। भूख-प्यास से व्याकुल डॉ. भीमराव फफक-फफक कर रोते हुए चिंतन मनन करने लगे कि “ इस देश में मेरे जैसा उच्च शिक्षा प्राप्त एवं विद्वान इतना अपमानित किया जाता है तो मेरे समाज के गरीब, पिछड़े, अपपढ़ लोगों की क्या हालत होती होगी। तभी डॉ. अंबेडकर ने संकल्प लिया कि “ मैं ऐसी व्यवस्था को बदल डालूंगा, जिसके कारण देश में अछूत वर्ग गुलाम है। उनका जीवन जानवरों से भी बदतर है। मैं शोषित समाज के उत्थान

एवं मुक्ति के लिए जीवनभर कार्य करूंगा तथा सामाजिक विषमताओं को मिटाने के लिए आजीवन संघर्ष करूंगा।” यह स्थान आज ‘संकल्प भूमि’ के नाम से जाना जाता है।

मैंने अपने आप को बिकने नहीं दिया - जब मेरे बेटे गंगाधर का निधन हुआ तब उसके मृत शरीर को ढकने हेतु नए कपड़े लाने के लिए लोगों ने मुझसे पैसे मांगे परंतु मेरे पास इतने पैसे भी नहीं थे कि मैं अपने बेटे के लिए कफन ला सकूं। तब मेरी पत्नी रामू (रमाबाई) ने उसकी साड़ी का एक टुकड़ा फड़कर दिया और हम गंगाधर को शमसान ले जा सके। मैंने अपनी जिंदगी में गरीबी के जो दिन देखे। वो भारत के किसी नेता ने नहीं देखे होंगे। फिर भी मैंने गरीबी के कारण कभी मेरा आत्म-सम्मान और मेरे आंदोलन को पीछे हटने नहीं दिया। ऐसी गरीबी में भी मैंने अपने आप को किसी के हाथों बिकने नहीं दिया।

राजरत्न और गोलमेच सम्मेलन - भारत के आंतरिक विवादों को सुलझाने के लिए ब्रिटिश हुकूमत ने सन् 1930, 1931 एवं 1932 में तीन गोलमेच सम्मेलन लंदन में आयोजित किए। जिनकी अध्यक्षता ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम जे. मैकडोनाल्ड ने की थी। जब बाबा साहब दूसरे गोलमेच सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाने की तैयारी कर रहे थे। तभी उनके बड़े भाई बालाराम आए और पूछा - “ भीमा तु कहां जा रहा है ? अपना राजरत्न नहीं रहा। इतना सुनते ही बाबा साहब स्तंभ रह गए। थोड़ी देर में उन्होंने अपने आप को संभाला और कहा भैया ! मुझे आज शाम को ही गोलमेच सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन जाना है। बालाराम ने कहा - “भीमा तु कैसी बात कर रहा है ? घर में बेटे की मृत देह पड़ी है और तु लंदन जा रहा है। तब बाबा साहब ने कहा - अगर आज मैं लंदन नहीं गया तो गांधी जी और अन्य सवर्ण हिंदू हम अछूतों के हक अधिकार को छीन लेंगे। मैं एक पुत्र को खोने का दर्द तो सह लूंगा लेकिन उन करोड़ों अछूत भाई-बहनों का क्या जो सदियों से जानवरों जैसा जीवन जीने को मजबूर हैं और बाबा साहब अपने दिल पर पत्थर रखकर लंदन को रवाना हो गए। ऐसे महामानव को मेरा कोटि-कोटि नमन।

संकलन - **राकेश कुमार मालवीय**

वरिष्ठ अनुवादक

जो कौम अपना इतिहास नहीं जानती, वह कौम कभी इतिहास नहीं बना सकती है। - डॉ. अम्बेडकर

छायाचित्र वीथिका



क्षेराकास की 52वीं बैठक में श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, महाप्रबंधक महोदय का स्वागत करते हुए मुराधि, श्री रविशंकर सक्सेना।



क्षेराकास की 52 वीं बैठक में श्री शोभन चौधुरी, अपर महाप्रबंधक का स्वागत करते हुए, मुराधि, श्री रविशंकर सक्सेना।



क्षेराकास की 52 वीं बैठक में मुराधि, श्री रविशंकर सक्सेना का स्वागत करते हुए श्री सुवीर श्रीवास्तव, तत्कालीन उपमुराधि।



राजभाषा विभाग की गृह पत्रिका 'राजभाषा सरिता' के 39वें अंक का विमोचन करते हुए महाप्रबंधक महोदय तथा अन्य अधिकारीगण।



क्षेराकास की 52 वीं बैठक का एक दृश्य।



राजभाषा विभाग की गृह पत्रिका 'राजभाषा सरिता' के 39वें अंक का अवलोकन करते हुए, श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, महाप्रबंधक, पमरे।

छायाचित्र वीथिका



क्षेराकास की 52वीं बैठक में स्वागत संबोधन देते हुए श्री रविशंकर सक्सेना, मुराधि।



क्षेराकास की 52वीं बैठक में अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए महाप्रबंधक, श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह।



क्षेराकास की 52वीं बैठक में उपस्थित समिति के सदस्यगण।



राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह में स्वागत भाषण देते हुए श्री पी.एस.बगड़वाल, तत्कालीन वराधि।



राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह में अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए श्री रविशंकर सक्सेना, मुराधि।

छायाचित्र वीथिका



राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह में उपस्थित अधिकारीगण एवं कर्मचारीगण।



राजभाषा पुरस्कार वितरण समारोह का दृश्य।



पुरस्कार प्राप्त अधिकारी एवं कर्मचारीगणों को प्रशस्ति पत्र प्रदान करते हुए श्री रविशंकर सक्सेना, मुराधि एवं श्री सुवीर श्रीवास्तव, तत्कालीन उपमुरधि।



सत्यमेव जयते

भारत का संविधान उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न,
समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य
बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज
तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल
सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्वारा
इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और
आत्मार्पित करते हैं।



प्रस्तावित नया संसद भवन, नई दिल्ली, भारत